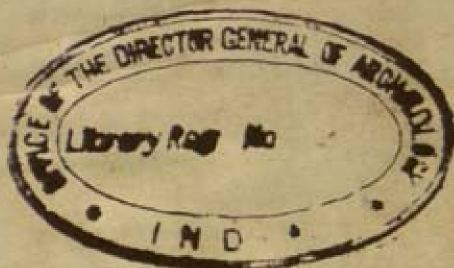
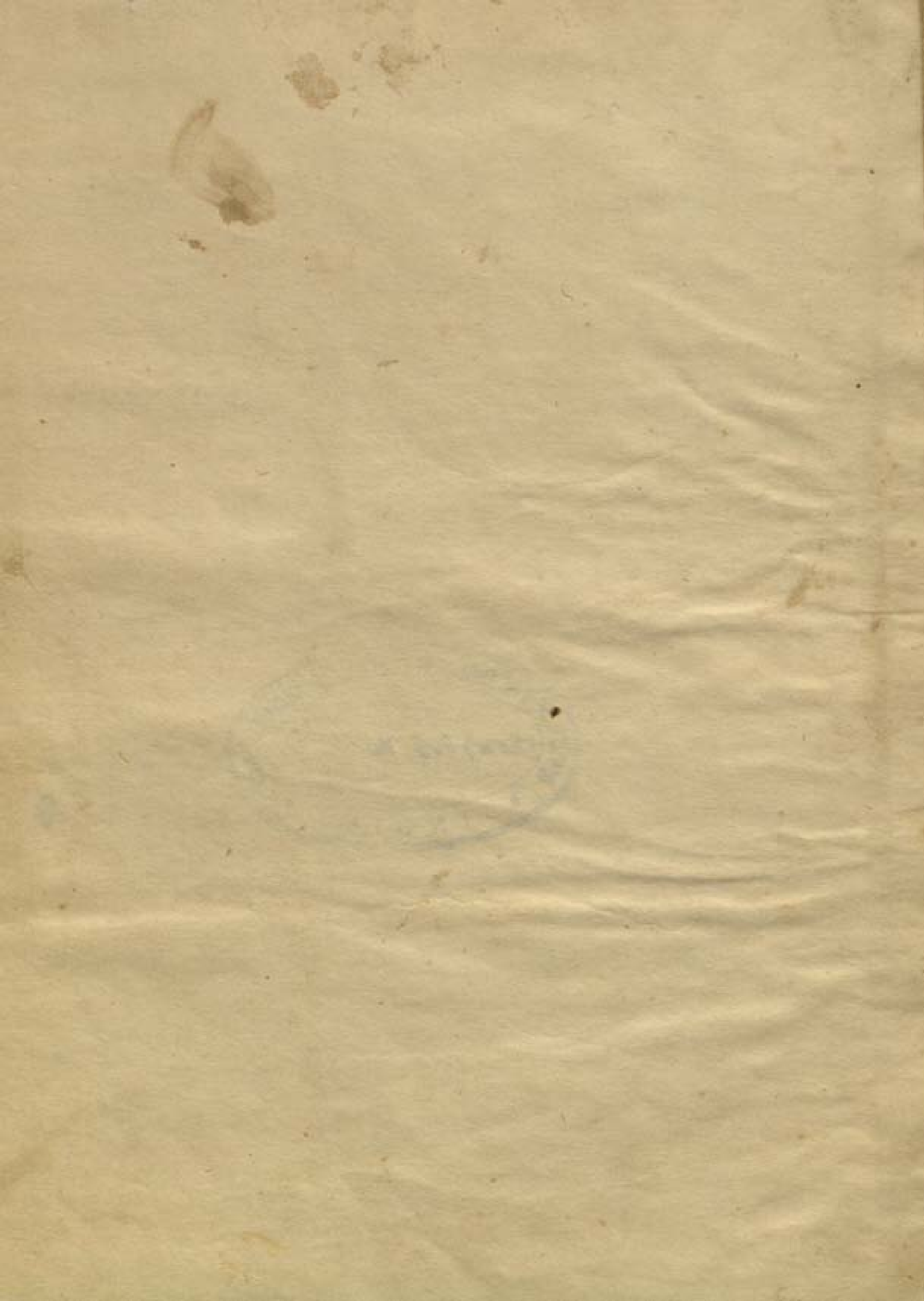
D.G.A. 79.


OFFICE OF THE DIRECTOR GENERAL OF ARCHAEOLOGY
Library Regr No
INDIA


OFFICE OF THE DIRECTOR GENERAL OF ARCHAEOLOGY
Library Regr No
INDIA



कलकत्ता-निवासी बाबू पूरणचन्दजी नाहर, एम्०ए० बी० एल्०की
धर्मपत्नी श्री इन्द्रकुमारीजीके ज्ञानपंचमी तपके उद्यापनार्थ वितीर्ण

खरतरगच्छ-पट्टावली-संग्रह

संग्राहक—

श्री जिनविजयजी

अधिष्ठाता–सिंघी जैन ज्ञानपीठ

शा न्ति नि के त न



प्रकाशक

बाबू पूरणचन्द नाहर, एम्० ए० बी० एल्०

नं० ४८, इंडियन मिरर स्ट्रीट, कलकत्ता



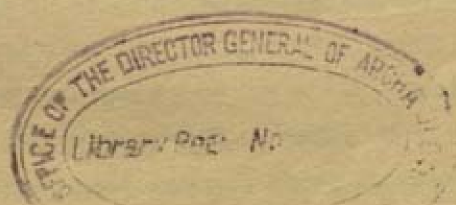
वीर नि० सं० २४५८] [विक्रम सं० १६८८

निवेदन

आज खरतरगच्छकी कई प्राचीन पट्टावलियोंका यह संग्रह पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करते हुए हर्ष होता है। इस विषयकी सब बातें प्रवीण इतिहासवेत्ता श्री जिनविजयजी महोदयके 'किञ्चित् वक्तव्य' से ज्ञात होंगी। जैनशासनके इतिहास-सम्बन्धी साधनोंमें पट्टावलीका स्थान उच्च है; अतः जैन और जैनेतर इतिहास-प्रेमी सज्जनोंको इन पट्टावलियोंसे विशेष लाभ होगा, इस भावनासे ही इन्हें प्रकाशित किया गया है। यह छोटासा संग्रह पुरातत्त्वज्ञोंके लिए अधिक उपयोगी हो, इसलिए साथमें अकारादि क्रमसे नामोंकी तालिका भी दे दी गई है। आशा है कि भविष्यमें ऐसे २ जो कुछ साधन मिलेंगे, उन्हें हमारे धर्मबन्धु प्रकाशित करनेका उद्यम करते रहेंगे।

कलकत्ता
४८, इंडियन मिरर स्ट्रीट

—प्रकाशक



सूची

किंचित् वक्तव्य

—:o:—

लगभग ६।७ वर्षसे खरतरगच्छीय पट्टावलियोंका यह छोटा सा संग्रह छपकर तैयार हुआ था लेकिन विधिके किसी अज्ञेय संकेतानुसार आजतक यह योंही पड़ा रहा और यदि विद्वद्वर बाबू पूरणचंदजी नाहर की उपालंभ भरी हुई मीठी चुटकियोंकी लगातार भरमार न होती तो शायद कुछ समय बाद यह संग्रह साराका सारा ही दीमकके पेटमें जाकर विलीन हो जाता।

पूनामें रहकर जब हम 'जैनसाहित्य-संशोधक' का प्रकाशन करते थे उस समय अहमदाबाद-निवासी साहित्य-रसिक विद्वान् श्रावक श्री केशवलाल प्रे० मोदी B. A. LL. B. ने खरतरगच्छ को एक पुरानी पट्टावलीकी प्रति हमें लाकर दी—जिसमें इस संग्रहकी प्रथम ही में छपी 'खरतरगच्छ-सूरिपरंपरा-प्रशस्ति' थी। उस समय तक खरतरगच्छ की जितनी पट्टावलियां हमारे देखने अथवा संग्रह करनेमें आइ उन सबमें यह प्रशस्ति हमें प्राचीन दिखाई पड़ी इसलिये हमने इसकी तुरंत नकल कर, 'जैन सा० सं०' के परिशिष्ट रूपमें छपवा देनेके विचारसे प्रेसमें दे दिया। कुछ समय बाद मोदोजीने एक और पट्टावलो भेजी जो गद्यमें थी और साथमें उन्होंने यह भी इच्छा प्रदर्शित की कि इसे भी यदि उसी प्रशस्तिके साथ छपवा दिया जाय तो अच्छा होगा। हमने उसकी भी नकल कर प्रेसमें दे दिया। जब ये प्रेससे कंपोज होकर आइं तो इसके पूरा फार्म होनेमें कुछ पृष्ठ खाली रहते दिखाई दिये तब हमने सोचा कि यदि इसके साथ ही साथ छपा उपाध्याय श्री क्षमाकल्याणजी की बनाई हुई वृहत्पट्टावलि भी दे दी जाय तो खरतरगच्छके आचार्योंकी परंपराका १६ वीं शताब्दि पर्यंतका वृत्तान्त प्रकट हो जायगा और इतिहास प्रेमियोंको उससे अधिक लाभ होगा। इस पट्टावलीकी प्रेस कापी की हुई हमारे संग्रहमें बहुत पहले ही से पड़ी हुई थी अतः हमने उसे भी प्रेसमें दे दिया। इसी तरह की, लेकिन इससे प्राचीन एक और पट्टावलो मेरे पास थी उसे भी, प्रत्यंतर होनेसे विशेष उपयोगी समझ कर इसी संग्रहमें प्रकट करनेका हमें लोभ हो आया और उसे भी छपने दे दिया। इस प्रकार चार पट्टावलियोंका यह छोटा सा संग्रह जब तैयार हो गया तब हमने इसे 'जैन सा० सं०' के परिशिष्टरूपमें न देकर स्वतंत्र पुस्तकाकार प्रकट करनेका विचार किया और यह स्वतंत्र पुस्तकका विचार मनमें घुसते ही हमारे दिलमें एक नया भूत आ घुसा। हम सोचने लगे कि जब पुस्तक ही बनाना है तब फिर क्यों नहीं विशेष रूपसे एक संकलित ऐतिहासिक ग्रंथके आकारमें इसे तैयार कर दिया जाय और खरतरगच्छके इतिहासका जितना मुख्य मुख्य और महत्वके साधन हों उन्हें एकत्र रूपमें संगृहीत कर दिया जाय क्योंकि हमारे संग्रहमें इस विषयकी कितनी ही सामग्रो—इन पट्टावलियोंके अतिरिक्त कई और भाषाकी पट्टावलियां, ग्रंथप्रशस्तियां तथा ख्यात आदि विविध प्रकारकी ऐतिहासिक सामग्री इकट्ठी हुई पड़ी थी। उन सब सामग्रियोंको संकलित कर ऐतिहासिक ऊहापोह करनेवाली विस्तृत भूमिका और टीका टिप्पणी आदि साथमें लगाकर इस संग्रहको परिपूर्ण बना दिया जाय तो श्वेताम्बर जैन संघका एक बड़ा भारी

शाखा-समुदायका अच्छा और प्रामाणिक इतिहास तैयार हो जाय। इस भूतके आवेशानुसार हमने उन सब सामग्रियोंका संकलन करना शुरू किया। ऐसा करनेमें हमें कुछ अधिक समय लग गया और अहमदाबादके पुरातत्त्व मंदिरके आचार्यपदके भारने हमारी पूनाकी विशेष स्थितिको अस्थिर बना दिया। इसलिये इस संग्रहके विस्तृत-संकलनका जो विचार हुआ था वह शिथिल होने लगा और चिरकाल तक कुछ कार्य न हो सका। इधर जिस प्रेसमें यह संग्रह छपा उसके मालिकने छपाईके खर्च आदिका तक़ाज़ा करना शुरू किया। जिस विस्तृतरूपमें इसे प्रकाशित करनेके लिये सोचा था उसमें बहुत कुछ समय और अर्थव्ययकी आवश्यकता थी और शीघ्र ही इस कार्यको परिपूर्ण करने जैसे संयोग दिखाई न देनेसे हमने अंतमें उस विचारको स्थगित किया और यह संग्रह जो इस रूपमें छप गया था, इसे ही प्रकाशित कर देना उचित समझा।

इसी बीचमें बाबूवर्य श्री पूरणचंदजी नाहरके अवलोकनमें यह छपा हुआ संग्रह आया और आपने इसे अपने खर्चसे प्रकाशित कर अपनी धर्मपत्नी श्रीमती इंद्रकुमारीजीके ज्ञान पंचमी तपके उद्यापन निमित्त वितीर्ण कर देनेका अभिप्राय प्रकट किया। तदनुसार पूनेसे यह छपा हुआ ग्रंथ-भाग कलकत्ते मंगवा लिया गया और प्रेसका बिल इत्यादि चुकता किया गया। इस संग्रहके साथमें हम कुछ दो शब्द लिख दें तो इसे प्रकाशित कर दिया जाय ऐसी बाबूजीको इच्छाको हमने सादर स्वीकार कर हम इस विषयमें कुछ सोचते ही थे कि कुछ ऐसे प्रसंग, एकके बाद एक, उपस्थित होते गये जिससे वर्षों तक हम उनकी उस आज्ञाका पालन नहीं कर सके और २।४ घंटेके कामको २।४ वर्ष तक ठेलते रहना पड़ा।

सन् १९२८ के प्रारम्भमें महात्माजीने गुजरात-विद्यापीठकी पुनरुर्घटना की, और विद्यापीठका ध्येय 'विद्या' नहीं 'सेवा' निश्चित किया और साथमें कई प्रतिज्ञाओंका बन्धन भी लगाया। हमारा उसमें कुछ विशेष मतभेद रहा और हमने अपने विचारोंको स्थिर करनेके लिए कुछ समय तक विद्यापीठके वातावरणसे दूर रहना चाहा। इसीके बाद तुरंत हमारा इरादा युरोप जानेका हुआ। युरोपके सामाजिक और औद्योगिक तंत्रोंका विशेषावलोकन करनेका हमें अधिक मौका मिला और उसमें हमें अत्यधिक रुचि उत्पन्न हुई। हमारा जो आजीवन अभ्यस्त-विषय संशोधनका है, उसमें तो हमें वहां कोई नवीन सीखनेकी बात नहीं दिखाई दी, क्योंकि जिस पद्धति और दृष्टिसे युरोपियन पण्डितगण संशोधन-कार्य करते हैं, वह हमें यथेष्ट ज्ञात थी और उसी पद्धति तथा दृष्टिसे हम बहुत समयसे अपना संशोधन-कार्य करते भी आते थे, केवल वहांके विद्वानोंका उत्साह और एकाग्रभाव विशेष अनुकरणीय मालुम हुआ। हमें जो खास अध्ययन करनेके विशेष विचार मालुम दिये, वे वहांके समाजवाद-विषयक थे। इन विचारोंका अध्ययन करते हुए हमारो जीवनाभ्यस्त जो संशोधन-रुचि है, वह शिथिल हो चली। समाज-जीवनके साथ सम्बन्ध रखनेवाली बातोंने मस्तिष्कमें अड्डा जमाना शुरू किया। इन बातोंका विशिष्ट अध्ययन करनेके लिये हमारी इच्छा वहांपर कुछ अधिक काल तक ठहरनेकी थी, लेकिन संयोगवश हमको जल्दी ही भारत लौट आना पड़ा। इधर आनेपर बाबूजीने इस संग्रहकी सर्वप्रथम ही याद दिलाई, लेकिन सत्याग्रहके नूतन युद्धमें जुड़ जानेके कारण और फिर जेलखाने जैसे एकान्तिवासके अनुभवानन्दमें निमग्न हो जानेसे इन पुरानी बातोंका स्मरण करना भी कब अच्छा लगता था। एक तो योंही मस्तिष्कमें समाज-जीवनके विचारोंका आन्दोलन घुड़दौड़ कर रहा था, और उसमें फिर भारतकी इस नूतन राष्ट्रक्रान्तिके आंदोलनने सहचार किया। ऐसी स्थितिमें हमारे जैसे

नित्य परिवर्त्तनशील प्रकृतिवाले और क्रान्तिमें ही जीवनका विकाश अनुभव करनेवाले मनुष्यके मनमें वर्षों तक पुराने विचारोंका संग्रह कर रखना, और फिर जब चाहें तब उन्हें अपने सम्मुख एकदम उपस्थित हो जानेकी आदत बनाये रखना दुःसाध्य-सा है।

जेलमुक्ति होनेपर विधाता हमें शान्तिनिकेतन खींच लाया। विश्वभारतीके ज्ञानमय वातावरणने हमारे मनको फिर ज्ञानोपासनाकी तरफ खींचना शुरू किया और हमारी जो स्वाभाविक संशोधन-रुचि थी, उसको फिर सतेज बनाया। वर्षोंसे हमने २१४ ऐतिहासिक ग्रन्थोंके सम्पादन और संशोधनका संकल्प कर रखा था और उसका कुछ काम हो भी चुका था, इसलिये रह-रहकर यह तो मनमें आया ही करता था कि यदि इस संकल्पके पूरा करनेका कोई मनःपूत साधन सम्पन्न हो जाय, तो एक बार इसको पूरा कर लेना अच्छा है। बाबू श्री बहादुरसिंहजी सिंघीके उत्साह, औदार्य, सौजन्य और सौहार्दने हमारे इस संकल्पको एकदम मूर्तिमन्त बना दिया और हम जो सोचते थे, उससे भी कहीं अधिक मनःपूत साधनकी संप्राप्ति देखकर परिणाममें हमने सिंघी जैन ज्ञानपीठ और सिंघी जैन ग्रन्थमाला का भार उठाना स्वीकार किया।

जबसे हम यहां आये, तभीसे इस संग्रहके लिये श्री नाहरजीका बराबर स्मरण दिलाना चालू रहा। हम भी आज लिखते हैं, कल लिखते हैं, ऐसा जवाब देकर उन्हें आशा दिलाते रहते थे। बहुत समय बीत जानेके कारण इस विषयमें जो कुछ हमारे पुराने विचार थे और जो कुछ हमने लिखना सोचा था, वह स्मृति-पटपर से अस्पष्ट हो गया। जिन प्रतियोंपरसे यह संग्रह मुद्रित हुआ था, वे भी पासमें नहीं रहनेसे, इस विषयमें क्या लिखें, कुछ सूझ नहीं पड़ती थी। 'विज्ञप्ति त्रिवेणि', 'कृपारस कोष', 'शत्रुंजय तीर्थोद्धार प्रबन्ध' इत्यादि पुस्तकोंके प्रणयनके बाद हमारा हिन्दी-लेखन प्रायः बन्द-सा ही है। पिछले कई वर्षोंसे निरन्तर गुजराती भाषा ही में चिन्तन, मनन, लेखन, और वाग्व्यवहार चलते रहनेसे हिन्दी-भाषाका एक तरहसे परिचय ही छूट गया, इस कारणसे कुछ हिन्दी लिखनेका ठीक-ठीक चित्तंकाम्य न हो पाता था, लेकिन इन दिनोंमें हमारा साहित्य-संग्रह हमारे पास पहुंच गया और वर्षोंसे संदूकोंमें बंद पड़े हुए पुराने कागजों और टिप्पणोंको उथल पुथल करते हुए इस विषयके कुछ साधन भी हाथमें आ गये, जिससे ये पंक्तियां लिखनेका मनमें कुछ विचार हो आया। बस यही इस संग्रहके बारेमें हमारा किञ्चित् वक्तव्य है।

श्वेताम्बर जैन संघ जिस स्वरूपमें आज विद्यमान है, उस स्वरूपके निर्माणमें खरतरगच्छके आचार्य, यति और श्रावक-समूहका बहुत बड़ा हिस्सा है। एक तपागच्छको छोड़कर दूसरा और कोई गच्छ इसके गौरवकी बराबरी नहीं कर सकता। कई बातोंमें तपागच्छसे भी इस गच्छका प्रभाव विशेष गौरवान्वित है। भारतके प्राचीन गौरवको अक्षुण्ण रखनेवाली राजपूतानेकी वीर भूमिका पिछले एक हजार वर्षका इतिहास ओसवाल जातिके शौर्य, औदार्य, बुद्धि-चातुर्य और वाणिज्य-व्यवसाय-कौशल आदि महद् गुणोंसे प्रदीप्त है और उन गुणोंका जो विकाश इस जातिमें इस प्रकार हुआ है, वह मुख्यतया खरतरगच्छके प्रभावान्वित मूल पुरुषोंके सदुपदेश तथा शुभाशीर्वादका फल है। इसलिये खरतरगच्छका उज्ज्वल इतिहास यह केवल जैन संघके इतिहासका ही एक महत्त्वपूर्ण प्रकरण नहीं है, बल्कि समग्र राजपुतानेके इतिहासका एक विशिष्ट प्रकरण है। इस इतिहासके संकलनमें सहायभूत होनेवाली विपुल साधन-सामग्री इधर-उधर नष्ट हो रही है। जिस तरहकी पट्टावलियां इस संग्रहमें संगृहीत हुई हैं, वैसी कई पट्टावलियां और प्रशस्तियां

संगृहीत की जा सकती हैं और उनसे विस्तृत और शृंखलाबद्ध इतिहास तैयार किया जा सकता है। यदि समय अनुकूल रहा, तो 'सिंघी जैन ग्रंथमाला' में एक-आध ऐसा बड़ा संग्रह जिज्ञासुओंको भविष्यमें देखनेको मिलेगा।

बाबू श्री पूरणचंदजी नाहरने बड़ा परिश्रम और बहुत द्रव्य व्यय करके जैसलमेरके जैन शिलालेखोंका एक अपूर्व संग्रह प्रकाशित कर इस विषयमें विद्वानों और जिज्ञासुओंके सम्मुख एक सुन्दर आदर्श उपस्थित कर दिया है। इसके अवलोकनसे, राजपुतानेके जूने पुराने स्थानोंमें जैनोंके गौरवके कितने स्मारक-स्तंभ बने हुए हैं तथा उनसे हमारे देशके ज्वलन्त इतिहासकी कितनी विशाल-समृद्धि प्राप्त हो सकती है इसकी कुछ कल्पना आ सकती है। इस ग्रंथमें प्रायः खरतरगच्छके ही इतिहासकी बहुत सामग्री संगृहीत है जो इस पट्टावलिवाले संग्रहकी बातोंको पुष्टि करती है तथा कई बातोंकी पूर्ति करती है। इन सब बातोंके दिग्दर्शनकी यह जगह नहीं है। ऐसे संग्रहोंके संकलन करनेमें कितना परिश्रम आवश्यक है वह इस विषयका विद्वान् ही जान सकता है 'विद्वानेव जानाति विद्वज्जनपरिश्रमः'।

जैसलमेरके लेखोंका ऐसा सुन्दर संग्रह प्रकाशित कर तथा इस पट्टावली संग्रहको भी प्रकट करवाकर श्रीमान् नाहरजीने खरतरगच्छकी अनमोल सेवा की है एतदर्थ आप अनेक धन्यवादके पात्र हैं। आपका इस प्रकार जो स्नेहपूर्ण अनुरोध हमसे न होता तो यह संग्रह योंही नष्ट हो जाता और इसके तैयार करनेमें जो कुछ हमने परिश्रम किया था वह अकारण ही निष्फल जाता अतः हम भी विशेष रूपसे आपके कृतज्ञ हैं।

शान्तिनिकेतन
सिंघी जैन ज्ञानपीठ
पर्युषणा प्रथम दिन, सं० १९८७

जिनविजय

॥ ॐ अर्हं ॥

नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय

॥ खरतरगच्छ-सूरिपरंपरा-प्रशस्तिः ॥

श्रियेऽस्तु वीरस्त्रिशलाङ्गजातः सेवागतानेकसुरेन्द्रजातः ।
दुष्टाष्टकर्मक्षयबद्धकक्षस्तिरस्कृताशेषविपक्षलक्षः ॥ १ ॥
यदीयसन्तानभवा मुनीश्वराः कुर्वन्ति धर्मं विमलं कलावपि ।
अद्यापि कालेऽत्र स पञ्चमेऽपि, श्रिये सुधर्मा गणभृद्वरोऽयम् ॥ २ ॥
येनाष्टौ नवबालिका नवनवस्नेहानुगा बन्धुराः
सौवर्ण्यो नवकोटयो दशगुणास्त्यक्ता नवाधिक्यकाः ।
येन स्वेन कुटुम्बकेन सहितेनाग्राहि दीक्षा गुरोः
सोऽयं केवलिपुङ्गवोऽप्यृषभभूर्जम्बूमुनिः पातु वः ॥ ३ ॥
चौरोऽपि प्रथितो विहाय सकलचौर्याद्यवद्यं सुधी-
रात्मीयं परिगर्ह्य कोणिकनृपाध्यक्षं तदागश्च यः ।
चौराणां शतपञ्चकेन कलितः प्रव्रज्य सर्वश्रुत-
ज्ञान्यासीत्प्रभवोऽथ सूरिमुकुटः सोऽस्तु श्रिये विद्विभुः ॥ ४ ॥
श्रुत्वा साधुमुखाद्विनिर्गतवचोऽहो कष्टमित्यादिकं
जैनीमूर्तिनिरीक्षणेन तरसा त्यक्त्वाध्वरं बन्धुरम् ।
संसाराद्विरतो व्रतं समाधिया चादाय सूरिपदं
लेभे सार्थश्रुतज्ञतास्पदमसौ शय्यंभवः सोऽवतात् ॥ ५ ॥
यः स्वल्पायुर्ज्ञात्वा निजसुतमनकस्य चात्तचरणस्य ।
दशवैकालिकमकरोत् स्वल्पदिनानल्पसुखहेतुः ॥ ६ ॥
तं शय्यंभवसूरिं प्रणमत भक्त्या गुणाब्जकासारम् ।
जिनशासनशृङ्गारं योगिमनःसरसिजे हंसम् ॥ ७ ॥
तत्पट्टभूषणमणिर्जयतु यशोभद्रसूरिधौरेयः ।
गुरुभक्तिशालिहृदयः सुखकारः संयमाधारः ॥ ८ ॥
संभूतिविजयसूरिः सकलश्रुतकेवली जगद्विदितः ।
निखिलश्रीसूरिशिरस्तिलकसमो जयतु योगीशः ॥ ९ ॥
प्राचीनगोत्रतिलको जिनशासनेऽस्मिन् मार्तण्डमण्डलवदद्भुतभास्करोऽयम् ।
दीप्तप्रकाशचरमश्रुतकेवलीशो जेजीयते य इह सूरिगणावतंसः ॥ १० ॥
संघोपरोधवशतोऽखिलदुष्टकष्टविघ्नापहारयुपसर्गहरं चकार ।
निर्युक्तिकृन्निखिलसूत्रकदम्बकस्य यः सोऽस्तु दुर्गतिहरो गुरुभद्रबाहुः ॥११॥

भूतो न कोऽपि न भविष्यति भूतलेऽस्मिन् श्रीस्थूलिभद्रसदृशो मुनिपुङ्गवेषु ।
येनैष रागभुवनेऽपि जितो हि कामः पण्याङ्गनावरगृहे वसता निकामम् ॥१२॥
ताते स्वर्गं गतेऽपि क्षितिपतिमणिना नन्दभूपेन राज्य-
मुद्रामस्यार्प्यमाणामपि च विगणयन् मोक्षदुर्गस्य मुद्राम् ।
भोगान् भोगीशतुल्यान् परिणतिविषमाः पण्यनारीर्विचार्य
त्यक्त्वैवं सर्वमेतद्व्रतचरणभरं यो दधार स्वदेहे ॥ १३ ॥
धन्यो हि सोऽपि जनकः शगडालमन्त्री लक्ष्मीश्च सा जनिकरी युवतीषु धन्या ।
वंशोऽपि धन्य इह नागरवाडवीयो यत्राजनिष्ट मुनिरेष मुनीन्द्रवन्द्यः ॥१४॥
शिष्यौ च स्थूलिभद्रस्य महागिरि-सुहस्तिनौ । दशपूर्वधरावेतौ प्रवीणौ पुण्यशालिनौ ॥१५॥
जिनकल्पतुलां बिभ्रत्तयोरेको महामुनिः । द्वितीयसंप्रतिक्ष्माप-प्रतिबोधकरोऽभवत् ॥१६॥
तस्योपदेशतोऽनेके विहाराः कारिता भुवि । तेन संप्रतिभूपेन यथा भूर्जिनमण्डिता ॥१७॥
वज्रः प्रवचनाधारस्तत्पट्टानुक्रमादभूत् । सुनन्दाकुक्षिसंभूतो जातमात्रो विरागवान् ॥१८॥
पालनके स्वपन्नेकादशाप्यङ्गानि लीलया । योऽपठद्बालभावेऽपि साध्वीनां वसतौ स्थितः॥१९॥
प्रवर्धमानः क्रमशः शशाङ्कवत् ददत्प्रमोदं सकलेऽपि सङ्घे ।
मातुर्विवादेऽपि गृहीतवाँश्चघुरजोहृतिं वाचमभूपयत्पितुः ॥ २० ॥
अथो गुरुः सिंहगिरिर्निजायुः पर्याप्तिमालोक्य पदं स्वकीयम् ।
संभिन्नपञ्चद्विक-पूर्वधारिणे मुनीन्द्रवज्राय ददौ समाहितः ॥ २१ ॥
श्रीवज्रसूरिर्गुणलब्धिभूरिः कुर्वन् विहारं विविधेऽपि देशे ।
प्रोत्सर्पणां श्रीजिनशासनेऽस्मिन् नानाविधां प्रातनुत प्रभुर्यः ॥ २२ ॥
स्वयंवरे तां धनरत्नकोटिसमन्वितां श्रेष्ठिसुतां त्यजन्तम् ।
अपि स्वरूपेण जितस्वरङ्गनां तं वज्रसूरिं प्रणमामि सादरम् ॥ २३ ॥
श्रीदृष्टिवादपठनाय गतेन मातुर्वाचा सुपूर्वनवकं च पपाठ सार्द्धम् ।
श्रीआर्यरक्षितगुरुः स मुदे शमाढ्यः संबोधिताखिलपरीवृतिरेष भूयात् ॥ २४ ॥
श्रीमदुर्वलिकादिपुष्पसुगुरुः श्रीआर्यनन्दिप्रभुः
जीयान्नागकरिप्रभुश्च विजयी श्रीरेवतीसूरिराट् ।
ब्रह्मद्वीपिगुरुः सदार्यसमितेः संप्राप्तदिक्षश्चिरं
खण्डिल्लो हिमवान् गुरुर्विजयते नागार्जुनो वाचकः ॥ २५ ॥
गोविन्दाभिधवाचकं गुरुवरं संभूतिदिन्नाह्वयं
श्रीलौहित्यमुनिं सदा प्रणिदधे श्रीपौष्यमुख्यं गणिम् ।
भाष्याद्येषु (?) विधायकं मुनिवरोमास्वातिसद्वाचकं
वन्दे श्रीजिनभद्रसूरितिलकं नित्यं कृतप्राञ्जलिः ॥ २६ ॥
त्रिखण्डमेदिनीराज्यं पालयन् सर्वतः प्रभुः । अवन्त्यां विक्रमादित्यः प्रबोध्य श्रावकी कृतः२७॥

मिथ्यात्विसंगृहीतः प्राग् महाकालजिनालयः। आत्मसाद्विहितो येन जिनशासनभास्वता ॥२८॥
नव्यस्तोत्रप्रभावेण पार्श्वमूर्तिः प्रकाशिता । त्रिनेत्रपिण्डिकामध्यात् स्फटाटोपैर्विभूषिता ॥२९॥
श्रीवृद्धवादिसूरीन्द्र–पट्टपङ्कजभास्करम् । संतोष्टुवीमि ते भक्त्या सिद्धसेनदिवाकरम् ॥३०॥
—चतुर्भिः कलापकम् ।

यैर्याकिनीभगवतीवचनात्प्रबुद्धैस्त्यक्त्वाभिमानमखिलं जगृहे चरित्रम् ।
यैः सोगता विधिबलेन वधोपनीतास्ते सागसोऽपि यतिनीवचनाच्च मुक्ताः॥३१॥
तद्व्यापत्तेः समीहोद्भवदुरितभिदे खाब्धिवेदेन्दुसंख्या
जैना ग्रन्थाः कृताः स्युर्घनतिमिरभिदो नव्यगाथाप्रबंधैः ।
यैरप्यात्मीयशिष्यव्यपगमनभवदुःखतापामृतौघ–
श्चक्रे ग्रन्थो रसालो धुरिकृतललितो विस्तराख्यो नवीनः ॥ ३२ ॥
ते हरिभद्रमुनीन्द्रा निस्तन्द्राश्चन्द्रकिरणसंकाशाः ।
श्री आवश्यकलघुगुरुविवृतिकराः संघजयकाराः ॥३३॥—त्रिभिः कुलकम् ।
वन्देऽहं देवसूरीशं नेमिचन्द्रगुरूत्तमम् । नमः सुविहितायाथ श्रीउद्योतनसूरये ॥३४॥
तत्पट्टदेवाचलकल्पवृक्षा भव्याङ्गिनां कल्पितदानदक्षाः ।
सूरीश्वरास्ते सुमनोभिरामा श्रीवर्धमाना गुरवो विरामाः ॥ ३५ ॥
ये अर्बुदाद्रावृषभेश्वरस्य मणीमयीमूर्तिमतिप्रभावाम् ।
प्रकाशयामासुरथोरगेन्द्रात्संप्राप्तसाम्नायकसूरिमन्त्राः ॥ ३६ ॥
तत्पट्टपङ्केरुहराजहंसा जैनेश्वरा सूरिशिरोवतंसाः ।
जयन्तु ते ये जिनशैवशासनश्रुतप्रविणा भववासमक्षिपन् ॥ ३७ ॥
श्री पत्तने दुर्लभराजराज्ये विजित्य वादे मठवासिसूरीन् ।
वर्षेऽब्धिपक्षाभ्रशशिप्रमाणे लेभेऽपि यैः खरतरो बिरुद्युग्मं (?)॥३८॥
संवेगरङ्गशाला विहिता प्रस्तावकुसुमवरमाला ।
तं जिनचन्द्रमुनीन्द्रं नमत जनानन्दक्षितिचन्द्रम् ॥ ३९ ॥
वृत्तिश्चक्रे नवाङ्ग्या ललितपदयुता देवतादेशतो यै–
र्नव्यस्तोत्रेण येषां प्रकटतनुरभूद् भूमितो दिव्यरूपी ।
पार्श्वः स्फूर्जत्फणालः कलिमलमथनः स्तम्भनाधीश्वरोऽय–
मस्य स्नात्रांबुसेकाद्विगतगदतनौ दिव्यरूपं यदीयम् ॥ ४० ॥
सान्निध्यकारा सकलार्तिहारिणी पद्मावती यत्पदपङ्कजे श्रिता ।
ते पूज्यराजाभयदेवसूरयो यच्छन्तु संघे सकलार्थसम्पदम् ॥ ४१ ॥
मूदुपक्षीयसूरेः प्राक्शिष्यः कच्चोलवर्णिनः । जिनवल्लभनामाभूद्विरागी कर्मभेदतः ॥४२॥
तस्याभयगुरोः पार्श्वादुपसंपच्चतोऽभवत् । जिनवल्लभशिष्योऽथ सर्वसिद्धान्तपारगः ॥ ४३ ॥
क्रमशोऽभयसूरीणां पट्टकन्दरकेसरी । जिनवल्लभसूरीन्द्रो द्रव्यलिङ्गगजार्दनः ॥ ४४ ॥

दुर्गे श्रीचित्रकूटे विकटभृकुटिका चण्डिका प्रत्यबोधि,
भद्रे मानोन्नतश्रीकरणसदभरः सत्यवाग् वैभवेनः ।
प्रागनिस्स्वो यत्प्रसादाद् धनपतिरभवत्सोऽपि सद्वारणो वै
चक्रे तेनापि जैने जिनगृहकरणाद्युन्नतिः शासनेऽस्मिन् ॥ ४५ ॥
पिण्डविशुद्धिप्रकरण–कर्मग्रन्थाद्यनेकशास्त्रकृते ।
तस्मै श्रीजिनवल्लभगुरवे सततं नमस्कुर्वे ॥ ४६ ॥
तत्पट्टे मेरुशृङ्गे सुरतरुसदृशो जैनदत्तो मुनीन्द्रो
दुर्गे श्रीचित्रकूटे ग्रहरसशशभृच्चन्द्रसंख्ये हि वर्षे ।
भूतप्रेताः पिशाचा ग्रहगणनिवहा कुग्रहास्ते गृहीता
येनासाध्येष (?) मन्त्रप्रबलबलतया योगिनीचक्रवालम् ॥ ४७ ॥
यत्पूर्वं चै [व] पट्टे विनिहितमभवद् केनचिद्दैवतेन
तस्मात्प्राकाशि मन्त्रैस्तदपि हि गुरुणा पुस्तकं मन्त्रगर्भम् ।
येनाथो विक्रमाख्ये विपुलपुरवरेऽवारि मारिः प्रबोध्य
लोका माहेश्वरीयास्तदपि हि गुरुणा स्थापिता जैनधर्मे ॥ ४८ ॥
तस्मिन्नेव पुरेऽक्षसप्तगुणितं साधुव्रतिन्योः पृथग्
एकस्यामपि दीक्षितं समभुवन्नन्यां क्षणात्सो प्यथ ।
सिन्धोर्मण्डलमाससाद च गुरुः पूर्णेन्दुवत्साधुभिः
संसेव्यो जनचक्रवाकनयनानन्दं ददत् शुद्धधीः ॥ ४९ ॥
तत्र श्रीसोमराजः सुरपतिसदृशो यत्पदाम्भोजभृङ्ग–
स्तुष्टस्तस्मै स दत्ते प्रवरमिति वरं ग्रामदेशे पुरेऽपि ।
श्राद्धः श्रीमाँस्त्वदीयो नरपतिसदृशः सत्प्रधानो गुरुर्वा
भाव्यैकैकः स एष प्रकटतरमिहाद्यापि जागर्ति गच्छे ॥ ५० ॥
यो योगीन्द्रनिषेवितक्रमयुगः प्राचीनपुण्योदया–
देवोक्तेश्च युगप्रधानपदवीं प्राप्तो जगद्विश्रुताम् ।
यस्योपान्तमुपासते सुरगणा दासा इवाहर्निशं
कल्पद्रुर्मरुमण्डले स जयति श्रीजिनदत्तो गुरुः ॥ ५१ ॥
तेषां नामग्रहणाद्विपत्तितां यान्ति सकलविपदोऽपि ।
अहिदष्टमृत्यभावो विद्युदपातो भवेद् भविनाम् ॥ ५२ ॥
विस्फुरति कान्तिरतुला सुकला देहेऽपि मन्दिरे सकला ।
कमला विस्मयजननी वदने वाणी सुधोद्गिरणी ॥ ५३ ॥
श्रीअजयमेरुदुर्गे स्वर्गे गमनं च जातमिव येषाम् ।
स्तूपं तिलकसुरूपं प्राचीदिक्तरुणीभालतले ॥ ५४ ॥

तत्रैव काले त्वथ निर्गतो गणः श्रीरुद्रपल्ल्यां जिनशेखरस्य हि ।
श्रीरुद्रपल्लीय इति प्रसिद्धो ग्रहर्तुचन्द्रेन्दुमिते च वर्षे ॥ ५५ ॥
वर्षे बाणखपक्षचन्द्रसुमिते श्रीविक्रमाख्ये पुरे
यस्योदारमहोत्सवः समभवत् पट्टाभिषेकक्षणे ।
चंचचन्द्रनिभाननो नरमणी भालो विशालो गुणैः
सोऽयं श्रीजिनचन्द्रसूरितिलको जीयान्मनोऽभीष्टदः ॥ ५६ ॥
योगिस्तंभितबिम्बमोचकतरस्तेषां पुनः स्थापक-
श्चैत्ये यः समभून्मृतेर्वशतयोत्तंभ्याशु तं योगिनम् ।
तोषात्तेन समर्पितामपि ललौ विद्यां न यः स्तंभिनी-
मुत्सिष्टेत्यघनन सा क्षितौ विनिहिता तेन क्रुध्यस्वानिनी (?) ॥ ६० ॥
गुरुणा पापमुक्तेन मुक्तो योगी गतोऽपि सः । सोऽयं जिनपतिः सूरिः सुरसूरिसमप्रभः ॥६१॥
जीयाच्चिरं चिरायुष्कः षट्त्रिंशद्गुणशेवधिः । षट्त्रिंशद्वादजेता च विधिमार्गनभोमणिः॥६२॥
श्रीजावालपुरे महोत्सवयुतो वस्वर्षिपक्षैणभृत्-
माने वर्षे इलातले समभवत्पट्टाभिषेको महान् ।
श्रीजैनेश्वरसूरिराजमुकुटो वाग्निर्जितो स्वर्गुरोः
श्रीभांडारिकनेमिचन्द्रतनयः स पातु वो वाञ्छितम् ॥ ६३ ॥
श्रीमद्वाद्वारकाख्येऽखिलनगरवरे थाग्निपक्षद्वयेन्दु-
संख्ये वर्षे विशालद्रविणवितरणे श्रावकैर्दीयमाने ।
पूज्यैर्विज्ञाय योग्यं स्वपदमलमचीकारि यः शैशवेऽपि
तं श्रीमत्सूरिराजं जिनपतिसुगुरुं संस्तुवे पूज्यपादम् ॥ ५७ ॥
प्रतिष्ठासमयेऽन्येद्युर्योग्येकस्तत्र चागतः । प्रतिष्ठितानि बिम्बानि स्तंभयामास विद्यया ॥५८॥
अत्रान्तरे सूरिगुणानभिज्ञा महत्तरोवाच स नर्मवाचम् ।
बालेन चन्द्रेण तु चान्द्रिमा कति विभो प्रकाशं कुरुषे कथं नहि ॥ ५९ ॥
[इति महत्तरावचनेन गुरुरमर्षतां प्राप ।]
शिखिशिखिलोचनशशिमितवर्षे जिनसिंहसूरिराजगुरोः ।
लघुखरतरीयगणो जातो जावालपुरनगरे ॥ ६४ ॥
चन्द्राग्निनयनशशिमितवर्षे जावालपुरमहादुर्गे ।
जैनप्रबोधसुगुरोरभवत्पट्टोत्सवो रम्यः ॥ ६५ ॥
शशिवेदनयनशशिमितवर्षे जिनचन्द्रसूरिराजस्य ।
श्रीमज्जावालपुरेऽजनिष्ट पट्टाभिषेकमहः ॥ ६६ ॥
मुनिमुनिनयनैणांकप्रमाणे हि वर्षे विपुलधनसमृद्धे पत्तनाख्ये पुरेऽस्मिन् ।
पदमहमहिमोच्चैर्विस्तृता यस्य शस्या स जिनकुशलसूरिर्भूरिसौभाग्यकारी॥६७॥
विमलगिरिवरेऽस्मिन् यस्य शश्योपदेशाद् घनतरधनकोट्या मानतुङ्गो विहारः ।
खरतरवसतेर्यः सुप्रतिष्ठाकरोऽभूदपहतदुरितौघः प्राणिनां सर्वकालम् ॥६८॥

रंगत्तरंगा सदने तुरंगा विशालनेत्रा युवती सरंगा ।
वाणीतरंगा वदने रसाला यस्य प्रसादात्किल संभवन्ति ॥ ६९ ॥
देवराजपुरे यस्य स्वर्गतस्य गुरोरथ । पूज्यमानं जनैः स्तूपं ददाति सकलं सुखम् ॥ ७० ॥
तद्यथा–निर्धनाय धनं दद्यात् नेत्रहीनाय लोचनम् ।
विद्याहीनाय सद्विद्यामश्रोतृणां च सुश्रुतिम् ॥ ७१ ॥
राज्यार्थिनां च यद्राज्यं सुखं सुखार्थिनामपि । प्रयच्छत्युत्तमं भोगं भोगार्थिभ्यो विशेषतः॥७२॥
कुष्ठिनां हरते कुष्ठं रोगं रोगवतामपि । कष्टं कष्टवतां पुंसां दौर्भाग्यं दुर्भगात्मनाम् ॥ ७३ ॥
—चतुर्भिः कलापकम् ।

शून्यं ग्रहाग्नींदुमितेऽत्र वत्सरे श्रीदेवराजाख्यपुरे पदोत्सवः ।
जज्ञे च यस्याविरभूत्सरस्वती श्रिये स वः श्रीजिनपद्मसूरिराट् ॥ ७४ ॥
खखवेदचन्द्रमाने वर्षे पट्टाभिषेचनं यस्य ।
गुणलब्धिरत्नजलधिर्जीयाज्जिनलब्धिसूरिगुरुः ॥ ७५ ॥
षच्छून्यवेदेन्दुमिते हि वर्षे पट्टोत्सवो जेसलमेरुदुर्गे ।
यस्याभवद् द्रव्यघनव्ययेन सोऽस्तु श्रिये श्रीजिनचन्द्रसूरिः ॥ ७६ ॥
बाणेन्दुवेदशशिभृत्प्रमिते च वर्षे श्रीस्तंभतीर्थनगरे समभूद् यदीयः ।
पट्टाभिषेकमहिमा गरिमालयोऽसौ जेजीयते गुरुजिनोदयसूरिराजः ॥ ७७ ॥
श्रीजिनेश्वरसूरीणां तदैव निर्गतो गणः । वेकट इति नाम्नासीद्विश्रुतोऽयं महीतले ॥ ७८ ॥
नेत्राक्षिनीरनिधिचन्द्रमिते च वर्षे श्रीपत्तने पुरवरे पदमाविरासीत् ।
श्रीमज्जिनोदयगुरोः पदपङ्कजालीभृङ्गायितं नमत तं जिनराजसूरिम् ॥७९॥
तत्पट्टनन्दनवने विभाति जिनभद्रसूरिसुरफलदः ।
सकलमनोमतदाता शतशाखावर्धितो बाढम् ॥ ८० ॥
अत्रान्तरे देवकुलादिपाटके चन्द्रर्तुवेदेन्दुमिते च वत्सरे ।
शाखा गुरुश्रीजिनवर्धनानां शुक्राद्यपक्षे दशमीदिनेऽभूत् ॥ ८१ ॥
बाणर्षिवेदेन्दुमिते च वर्षे माघस्य राकादिवसेऽजनिष्ट ।
पट्टोत्सवो भाणसपल्लिकायां नंनौमि तं श्रीजिनभद्रसूरिम् ॥ ८२ ॥
गुरोः श्रीजिनभद्रस्य महिमा वर्ण्यते कियान् । यद्भाले भासते भाग्यलक्ष्मीर्विस्मयकारिणी॥८३॥
वामेतरे यत्करपङ्कजेऽस्मिन् चेक्रीयते सिद्धिरमासुकेलिम् ।
विहारनीरोर्मय एव येषां संपत्तिशस्यानि समेधयन्ति ॥ ८४ ॥
दारिद्र्यं क्षीयते येषां सौम्यदृष्टिविलोकनात् । चन्द्रोदयाद्यथापैति संकोचः कुमुदाकरे ॥८५॥
तत्पट्टशक्रासनदेवराजो विराजते श्रीजिनचन्द्रसूरिः ।
श्रीपत्तने यस्य पदोत्सवोऽभूद्बाणेन्दुबाणेन्दुमिते च वर्षे ॥ ८६ ॥
श्रीमज्जेसलमेरौ समराकारितविहारमध्येऽस्मिन् । जिनचन्द्रसूरिगुरुणा चक्रे बिम्बप्रतिष्ठा सा ॥८७॥

तत्पट्टपङ्कजयुगे भ्रमरायमाणं नंनम्यते जिनसमुद्रगुरुं तमेनम् ।
नेत्रेक्षणेषुशशभृत्प्रमिते च वर्षे पट्टोत्सवो विपुलपुञ्जपुरे यदीयः ८८ ॥

दाने वितर्थिमाणे प्रवरां चक्रिरे प्रतिष्ठां ये ।
वाग्भटमेरुविहारे सारेऽस्मिन् भूतले सुतराम् ॥ ८९ ॥

आदेशान्नृपसातलस्य मुदितो जाटाभिधः श्रीवरो
रत्नाब्धीषुशशिप्रमाणशरदि प्रोद्भूतपुण्योत्सवे ।
श्रीमण्डूकवराभिधानविषयेऽप्यानीतवान् माधवे
श्रीमज्जेसलमेरुतः पुरवरे योधानके श्रीगुरून् ॥ ९० ॥

करसरोरुहसिद्धिरमाधरान् सकललब्धिमहोदधिसुन्दरान् ।
गुरुगुणावलिभूषितविग्रहान् जिनसमुद्रगुरूनमतादमून् ॥९१॥

—चतुर्भिः कलापकम् ॥

तेषां पट्टाम्भोजलीलामरालाः सूरीशाः श्रीजैनहंसा रसालाः । सं 1556
कामध्वंसे नीलकण्ठोपमाना जेजीयंतां निर्जिताशेषमानाः ॥ ९२ ॥

श्रीविक्रमाख्ये नगरे विशाले बाणेषुबाणेन्दुमितौ समायाम् ।
ज्येष्ठस्य शुक्ले नवमीदिनेऽथ वारे गुरौ चारु शुभे पि लग्ने ॥ ९३ ॥

श्रीकर्मसिंहेन कृतोद्यमेन धनव्ययात्प्रीणितसर्वलोकः ।
येषां गुरूणां नतनागराणां पट्टोत्सवोऽकारि सुविस्तरोऽयम् ॥ ९४ ॥

अत्रान्तरे श्रीजिनदेवसूरेः श्रीआद्यपक्षीयगणो विभिन्नः ।
रेयाभिधाने नगरेऽजनिष्ट बाणर्तुबाणेन्दुमिते च वर्षे ॥ ९५ ॥

कुर्वन्तः क्रमशो विहारमनघं देशेष्वनेकेष्वथ
श्रीमेवातविशेषकेऽतिविपुले श्रीआकराख्ये पुरे ।
जग्मुस्तत्र शकन्दरो नरपतिस्तद्राज्यभारंधरौ
श्रीमड्डूंगरपद्मसिंहसचिवौ श्रीमालचूडामणी ॥ ९६ ॥

तौ स्वश्रीफलकाङ्क्षिणौ वितरणैरत्यद्भुताडम्बरै-
श्चक्राते नगरप्रवेशनमहं श्रीमद्गुरूणां मुदा ।
तेषां तत्रसतामथो गुणवतां प्राचीनकर्मोदयात्
कोऽप्येको व्रतिकमुट दुष्टमतिकः पश्यन् सदौतुथुलम् (?) ॥९७॥

सोऽन्येद्युः क्षणमाप्य पापहृदयः सत्साष्टवारं कुधीः
साहीनस्य पुरोरदासिमखिलां (?) चक्रे तदा तामथ ।
नो मन्येत नृपस्ततश्च किमपि प्रोद्भ्राव्य कूटाशय-
मेकः श्वेतपटो महानतिशयीहास्तीति संश्लाघते ॥ ९८ ॥

तस्यैवं कथया तया हयपतिश्चित्ते स विस्मापितः
किञ्चित् प्रष्टुमतः स्वधाम्नि कुतुकात् सूरीञ्जिनाय द्रुतम् ।
तत्पृष्टैर्गुरभिश्च सत्यवचनेपूक्तेषु रोषादसौ
चिक्षेपांह्रियुगे तदा नयवतां जंजीरमेषां हहा ॥ ९९ ॥
तावत्तस्य हृदि भ्रमे भवति नो स्वं चापरं वेत्त्यसा-
वुद्रावन्त्वथ पश्यति स्म भयदं किंचित्ततो चिन्तयन् ।
ज्ञातं सैष सिताम्बरः कलयतीतीदृक्कलां तत्क्रिया
द्राग्भीतो गुरुमोक्षणाय नृपतिश्चादिक्षदारक्षकान् ॥ १०० ॥
जीरापल्लिपुरीशपार्श्वकृपया प्राचीनपुण्योदया-
दर्हद्ध्यानवशात्तदा जयजयारावे प्रवृत्ते सति ।
सार्धं दुःस्थितबन्दिपञ्चकशतैः श्रीसूरयो निर्ययुः
श्रीराहोर्वदनात् शशाङ्कवदतः साहीनकारोदरात् ॥ १०१ ॥
अमन्दानन्दजांकूरा उदगच्छन्मनोवनौ । विवेकिश्राद्धलोकानामुद्दीप्तं जिनशासनम् ॥१०२॥
गीतनर्तनवादित्रमङ्गलध्वानिपूर्वकम् । वर्धापनं च सर्वत्र गुरूणां मोचनेऽजनि ॥१०३॥ युग्मं
ते मेघराजकुलनन्दनकल्पवृक्षाः निःशेषजन्तुहृदभीप्सितदानदक्षाः ।
श्रीजैनहंसगुरवोऽनघसंघलोके यच्छन्त्वमी सकलसिद्धिमुदारबुद्धिम् ॥१०४॥
श्रीसूरयोऽप्यथ परंपरया विहारं कुर्वन्त एव नगरं वरपत्तनाख्यम् ।
प्राप्ताश्चिरेण करवस्त्रिपुचन्द्रसंख्ये वर्षे समाहितधियोऽत्र च ते स्वरापुः ॥१०५॥
तेषां पट्टसरोजे श्रीजिनमाणिक्यसूरिगुरुहंसाः ।
विशदोभयपक्षधरा जयन्तु जगतीवराभरणाः ॥ १०६ ॥
येषां पट्टमहोत्सवो जयजयारावः प्रवृत्तो महान्
श्रीवालाहिकगोत्रभूषणमणिः श्रीदेवराट्कारितः ।
पक्षाब्देषुशशिप्रमाणशरदि श्रीपत्तनाख्ये पुरे
माघस्योज्ज्वलपञ्चमीवरदिने स्वोपार्जितार्थव्ययात् ॥ १०७ ॥
तेऽमी राजकुलाङ्गजाः सुगुरवः सूरीश्वराः साम्प्रतं
रत्नादेव्युदरांवुधौ शशधराः पुण्याब्जपाथोधराः ।
सौभाग्याद्भुतभालभाग्यतिलकात्पूर्वर्षिरेखांगताः
नन्दन्त्वम्वरसंस्थिताश्चिरतरं यावद्रवीन्दुध्रुवाः ॥ १०८ ॥
श्रीमज्जिनाज्ञाप्रतिपालकाय तीर्थंकरैर्वन्द्यपदाम्बुजाय ।
संघाय भूयाच्छिवसाधकाय भद्रं जगज्जन्तुहिताय नित्यम् ॥ १०९ ॥
श्रीचन्द्रगच्छगगने जिनहंससूरिराज्ये कराष्टशरचन्द्रमितेऽथ वर्षे ।
चक्रे प्रशस्तिरिति वोधयशोर्थिनैषा किञ्चिन्मया स्थविरसूरिपरंपरायाः ॥ ११० ॥



॥ खरतरगच्छ पट्टावली ॥



[१]

श्रीगौतमस्वामी गौर्ब्बरग्रामवासी वसुभूति-ब्राह्मण–पृथ्वीभार्या तयोः पुत्रः। गौतमगोत्रः। तस्य गृहस्थत्वे वर्ष ५०, छद्मस्थत्वे वर्ष ३०, ततः श्रीवीरनिर्वाणसमये केवलमासाद्य १२ वर्षैः सिद्धः। एवं सर्वायुः ९२॥

श्रीवीरपट्टे सुधर्म्मस्वामी।

अग्निवैश्यायनगोत्रः। कुलागसंन्निवेसे धम्मिल्लपिता भद्दिला माता। तस्य ५० वर्षान्ते दीक्षा, ४२ वर्ष छद्मस्थत्वं, ८ वर्षाणि केवलं, सर्वायुः १००; श्रीवीरात् २० वर्षैः सिद्धः।

तत्पट्टे श्रीजंबूस्वामी।

काश्यपगोत्रः, श्रीराजगृहीनगरी, ऋषभदत्तपिता, धारिणी माता, तयोः पुत्रत्वेन पंचमस्वर्गात् च्युत्वा समुत्पन्नः। ८ कन्या-९९ कोटिकांचनत्यागी। गृहे वर्ष १६, व्रते २०, केवले ४४; एवं वर्ष ८० परमायुः। वीरात् ६४ वर्षैः सिद्धः।

ततः प्रभवः कात्यायनगोत्रः।

ततः शय्यंभवः। वीरात् ९८ वर्षैः स्वर्गतः।

श्रीयशोभद्रः।

आर्यसंभूतविजयः।

भद्रबाहुस्वामी। उवसग्गहरंकर्त्तावीरात्१७०

थूलिभद्रः। कोश्याप्रातिबोधकः २१४ वर्षैः १४ पूर्वधरः।

आर्यमहागिरिः। दशपूर्वधरो जिनकल्पतुलनाकृत् वीरात् २७०।

आर्यसुहस्तिः। अत्रांतरे सिद्धसेनप्रतिबोधितो विक्रमादित्योऽजनि।

वज्रस्वामी दशपूर्वधरः। तच्छिष्यात् नागेंद्र, चंद्र, निर्वृति, विद्याधर; गच्छ ४ स्थापना।

कालिकाचार्यः। आर्यश्यामाऽपरनामा। वीरात् ४१३।

गर्दभिल्लोच्छेदको कालिकाचार्यो वीरात् ५०० वर्षैः।

शान्तिसूरिः।

हरिभद्रसूरिः। याकिनीधर्मपुत्रो होमानीत-बौद्धप्रायश्चित्तार्थं १४४४ प्रकरणकर्ता वीरात् ५८५ वर्षैः।

संडिल्लसूरिः।

आर्यसमुद्रसूरिः।

आर्यमंगुः।

आर्यधर्मः

आर्यभद्रः।

आर्यवयरादिः।

दुर्बलिकापक्षः।

देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणः। सकलसिद्धान्तलेखनकृत् वलभ्यां वीरात् ९०० वर्षैः।

गोविंदवाचकः।

उमास्वातिवाचकः। प्रशमरतिप्रकरणकृत्।

देविंदवाचकः।

जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणः। सर्वभाष्यकर्त्ता ९८० वर्षैः।

शीलांगाचार्यः। प्रथमद्वितीयांगवृत्तिकर्त्ता।

श्रीदेवसूरिः।

श्रीनेमिचंद्रसूरिः।

१. श्रीउद्योतनसूरिः।

२. श्रीवर्धमानसूरिः। गाजणादि १३ पातिसाह—च्छत्रोद्दालक चंद्रावती—नगरी—स्थापक विमल दंडनायक निर्मापित श्रीविमलवसतौ ध्यानबलवशीकृतः वालीनाहक्षेत्रपालप्रकटित वज्रमय आदीश्वरमूर्त्तिस्थापकः षण्मासानाचाम्लैः प्रकटीकृतधरणेन्द्रात् सूरिमंत्रशुद्धिकारी।

३. श्रीजिनेश्वरसूरिः। सरसापत्तनवासीविप्रः शिरसि मच्छिकादर्शनात् प्रतिबुध्दो गृहीतदीक्षः पत्तनमागतः। तत्र सोमपुरोहितगेहे स्थितः। वेदऋचासत्यापनेन रंजयित्वा तत्साहाय्येनैव संवत् १०८० दुर्लभराजसभायां ८४ मठपतीन् जित्वा प्राप्तखरतरविरुदः।

४. संवेगरंगशालाप्रकरणकारी श्रीजिनचंद्रसूरिः। अन्यदा श्रीजिनेश्वरसूरयः मालवदेशे धारापूर्यां प्राप्ताः तत्र महाधनश्रेष्ठी—धनदेवीपुत्रः अभयकुमाराख्यो देशनां श्रुत्वा प्रबुद्धो दीक्षां जग्राह। क्रमेण अभयदेवसूरयो जाताः गीतार्थाः।

५. अभयदेवाचार्यो बह्वाचाम्लकरणजातकुष्ठरोगो धवलकेऽनशनप्रतिपत्तये आहूतासन्नसंघो पि निशि शासनसुरी ज्ञापितस्य स्तंभनकग्रामे सेढीनदीतटस्थ पंपरापलाशाधः स्थित स्वयंदुग्धकपिलाधेनुपयःसिच्यमान श्रीपार्श्वस्य 'जयतिहुअण'द्वात्रिंशतावृत्तैः प्रकटीकारको गतकुष्ठो नवांगीवृत्यादि महाकृत्यकरणादानीतगुर्वावलीमध्यनामा च।

६. श्रीजिनवल्लभसूरिः। चैत्यवासि सुवर्णकबोलकवर्षि जिनचंद्रसूरिशिष्यो दशवैकालिकसूत्रवाचनाद्वैराग्यवान् स्वयं गुरुं पृष्ट्वा अभयदेवसूरिमुपसंपन्नः। तदनु पिंडविशुद्धि—सार्धशतक—षडशीतीत्यादिग्रंथकृत् लेखरूपलिखित—१२ कुलकप्रेषणेन दशसहस्रवागडी प्रतिबोधकः स्वक्रियागुणप्रबोधितचित्रकूटीयचामुंडः। नास्य परपक्षीयस्य पदं देयमिति सर्वसंघोक्त्या श्रीअभयदेवोक्तमेनं मुक्त्वा नान्यस्य ददामीति देवभद्राचार्योक्त्या च १२ वर्षाणि पट्टे शून्ये षद् मास ममायुरस्तीत्यऽगृह्णतोपि प्रदत्तं संवत् ११६७ पदं। संवत् ११६८ चित्रकूटे स्वर्गप्राप्तिः।

७. श्रीजिनदत्तसूरिः। संवत् ११३२जन्म। वाचकमंत्रीपिता। वाहडदे माता। संवत्११४१ दीक्षा गृहीता, ११६९पाटि वैशाषवदि ६दिने। श्रीजिनदत्तसूरिः ज्योतिर्वली विक्रमपुरे मारिनिवर्तनद्वारा प्रबोधित ५०० शिष्य दीक्षक एकनंद्यां, उज्जयिन्यां महाकालप्रासादे स्तंभमध्यादौषधबलेन प्रथमानुयोगपुस्तकाकर्षकः। ६४ योगिनी, ५२ वीर क्षेत्रपालादिसाधकः। ओसीयानगरे ओसवंशीय लक्ष श्रावकप्रतिबोधकः। १५०० साधु, १००० साध्वीदीक्षकः। नागदेवश्राद्धाराद्धांबिकालिखित 'दासानुदासा इव' एतत्काव्यवाचनात् ज्ञातयुगप्रधानपदः। श्रीजिनदत्तसूरीणां सप्तवराः योगिनीभिः प्रदत्ताः-ग्रामे २ एकः श्रावको दीप्तिमान् भवति। १। श्रावकाः प्रायेण निर्धना न भवन्ति। २। श्रावकस्य कुमरणं न भवति। ३। साध्व्या रितुर्नायाति। ४। गुरुनाम्ना शाकिनी न प्रभवति। ५। विद्युन्न पराभवति। ६। खरतर श्रावको यो मूलताणे याति स पंच टंककान् लात्वा समायाति। ७। एते सप्तवराः। अथ योगिनीभिः सप्तवराः श्रीगुरुपार्श्वात् मार्गिताः:-यः आचार्यो भवति स पंचनंदीं साधयति। । १। सूरिमंत्रं साधयति। २। सामान्यसाधुर्द्विसाहस्री जापं करोति। ३। श्राद्धा उभयकाले

सप्त स्मरणगुणनं कुर्वन्ति ।४। श्राविका त्रिशतीप्रभृतीः गुणति ।५। मासं प्रतिगृहे आचाम्लद्वयं करोति ।६। यती शक्त्या एकाशनं करोति।७। एते सप्त वराः योगिनीनां दत्ताः। दिल्ली १, उज्जेणी २, भरुअच्छि ३, अजमेरु ४, ए ओठपीठ। तत्र गच्छेशेन नागंतव्यमिति वक्ता च संवत् १२११ आसाढ सुदि ६ तिथौ अजयमेरौ स्वर्गगमनं।

—संवत् १२०५ रुद्रपल्ल्यां छद्मना सूरिपदं गृहीतं जिनशेखरेण ततो रुद्देलियागणो जातः।

८.श्रीजिनचंद्रः। नरमणिमंडितभालः।श्रीजिनदत्तसूरिभिः स्वहस्तेन पट्टे स्थापितः। पूर्वस्यां दशवर्षाणि स्थित्वा मुहतीयाण श्राद्ध प्रतिबोधकः। यश्च गौर्जरत्रायैं आगच्छत् अंतरा आयात श्रीमाल मदनपाल श्रीचंदादि दिल्लीसंघमहाग्रहेण तत्र गच्छन् प्रतोल्यां रजोहरणपाताज्ञातच्छलस्तत्रैव सं० १२२३ स्वर्गगामी। पोडीयाक्षेत्रपालस्तत्स्तूपे अधिष्ठाता तन्मणिश्च योगिना गृहीतः। मदनपालेन गुरुभृतौ अनशनं गृहीतं। तुर्ये २ पट्टे श्रीजिनचंद्र सूरिनामस्थापनं।

९. श्रीजिनपत्तिसूरिः। प्राप्त १५ वर्ष पट्टो चव्वेरकपत्तने ३६ वादजेता माल्हूगोत्रः। आसानगरे श्रीमालहाजीप्रतिष्ठायां योगिस्तंभितप्रतिमायाः स्ववासक्षेपादुत्थापकः। तदीयमानविद्याद्वयाऽग्राहकः तांबूलास्वादनात्। खरतरगच्छसूत्रधारः। परीक्षभंडारीनेमिचंद्रदत्तांबडपुत्रः। संव० १२७७ प्रल्हादनपुरे दिवं जगाम।

१०. श्रीजिनेश्वरसूरिः। भंडारीनेमिचंदपुत्रः। सर्वदेवाचार्यतः प्राप्तसूरिपदः। सं० १३३१ स्वर्ययौ।

—अत्रान्तरे श्रीजिनप्रभगुरु-श्रीजिनसिंहसूरेर्लघु-खरतरगणो जज्ञे।

११. श्रीजिनप्रबोधसूरिः। दुर्गपदप्रबोधग्रंथ व्याख्याता सं० १३४१ स्वर्गः।

१२. श्रीजिनचंद्रसूरिः। छाजहडवंश्यः शतवर्षायुः चतुर्नृपप्रबोधकः कलिकालकेवलीति विरुदः। सं १३३६ जावालपुरे स्वर्गतः।

—तदानीं राजगच्छ इति ख्यातिः।

१३. श्रीजिनकुशलसूरिः। छाजहडगोत्रः मरुदेशे समीयाणउग्रामः। मंत्रीजील्हागर जयसीरीमाता। सं० १३३० जन्म, सं० १३४७ दीक्षा, सं० १३७७ पाटणनगरे पाटः। शत्रुंजये २२ वर्षाणि यावत् प्रतिदिनभोजित श्राद्ध पंचशत भीमपल्ली जेसलमेरुकारित श्रीवीरपार्श्वनाथप्रासाद सा० तेजपालपुत्र सा० धरणा, सा० कडूआ कारित खरतर-वसहीति नाम प्रसिद्ध श्रीमानतुंगप्रतिष्ठाकारकः। उच्चाऽध्वनि मार्गितजलदाता सं० १३८९ देवराजपुरे स्वर्गतः।

१४. श्रीजिनपद्मसूरिः। श्रीतरुणप्रभैरष्टमवर्षेपि दत्तसूरिपदो वाग्भटमेरौ गरिष्ट श्रीवीरचैत्यालोकजाताश्चर्यपृष्टविवेकसमुद्रोपाध्याय 'बूहाणंदा वसही वड्डी अंदरि किउं माणी' इति वचनेन प्रगटितमूर्खभावः पत्तनसमीपवर्तिस्वरस्वतीनदीतीरे निशि प्रातर्मया संघसमक्षं कथं व्याख्याकर्तव्येति चिंतासमनंतरमेव प्रत्यक्षीभूतसरस्वतीलब्धवरः 'अर्हंतो भगवंत इंद्रमहिताः' इति काव्यं निर्माय व्याख्यानमकारि। बालधवलकूर्चालसरस्वतीविरुदः श्रीजिनपद्मसूरिप्रमुखसाधु १८ सर्वसंघोपि स्तंभतीर्थे मांद्ये पतितः। तत्र चैत्ये पुरा श्राद्धीभूत पुण्यवीरयक्षप्रतिमा केनचिच्छ्राद्धेन भाषितः लपनश्रीलुंटक भक्षणे किं सुगमं, न संघचिंता? तेनोक्तं किंचित् साहाय्यं करोषि तदा सज्जीकरो-

पि, त्वं श्रीअजितकायोत्सर्गं घटी ४५ निरंतरं अस्खलितं कुरु अन्यथा आगंतुं न शक्यते। तेन तथा प्रतिपन्ने अष्टापदे गत्वा प्रासादखालके उपविश्य, तदा प्रस्तावे देवैः स्नात्रं प्रारब्धं वर्तते केनचिन्मृन्मयं कलशं स्नात्रकरणाय गृहीतं स तस्य नालको भग्नः मुक्तश्च तेन तद्गृहीत्वा पुनः खालं प्रविशता कलशमुखं भग्नं तथाविधं समानीय श्राद्धस्य दत्तं श्राद्धेन हसितं 'जेहवउ बोपउ छइ, तेहवउ बोपउ आप्यउ' तच्छंटया सर्वेपि सज्जा जाताः तन्मध्यैकेन गणीशेन श्रीजयसागरपाठकानामिदं सर्वं प्रोक्तं तच्छटागंधो वार ६७ वस्त्रधौते पि न गतः। ततः तच्चैत्यस्थपुण्यवीरयक्षक्षेत्रपालाभ्यां अन्यस्त्री भुज्यते चैत्यमध्ये अन्यस्त्री अन्यपार्श्वे मुच्यते स्वस्वामीर्ष्यया तस्य चपेटादिना मुखवक्रादिकरणं संघविज्ञप्तेन श्रीविनयप्रभपाठकेन कीलिकया चैत्ये कीलितौ; पुण्यवीरमूर्तिरद्यापि वर्तते। श्रीजिनपद्मसूरिः सं १४०० स्वः प्राप्तः पत्तने।

१५. श्रीजिनलब्धिसूरिः। नवलखाशाखाशृंगारः सैद्धान्तिकोऽवधानपूरको नागपुरे स्वर्ययौ।

१६. श्रीजिनचंद्रसूरिः। उद्यतविहारी स्तंभतीर्थे सं० १४१४ स्वर्गतः।

१७. श्रीजिनोदयसूरिः। माल्हूसा० रूदपालधारलदेपुत्रः। समरनामा। प्रल्हादनपुरतो यत्रयात्रांकृत्वा भीमपल्ल्यां कील्हूभगिन्या सह गृहीतदीक्षः। सोमप्रभनामा। तरुणप्रभाचार्यतः प्राप्तपदः। पंचतिथिकृतोपवासः। २८ साधुभिः कृतसर्वदेशविहारः। क्रमेण शिष्यशिष्यणीसंघपतिबाहुल्यकृत् कृताऽनेकपदस्थः सलषणपुरे १२ ग्रामाऽमारिघोषणाकारि। सुरत्राण सनापत देसलहरा सारंगस्पर्धया शत्रुंजये यात्राकारी महर्द्ध्या सा. कोचरश्राद्धकृतप्रवेशोत्सवः पत्तने डागा आसाधीर स्तंभतीर्थे सा० कर्मसीगृहस्थितहस्तिशालः। पत्तने सं० १४३२ स्वः प्राप्तः

१८. तदानीं सतीर्थ्यो मानितासपदो पि मं० वेगडभ्राताधर्मवल्लभसहजज्ञानगणी सा० उदयकरणवचसा उत्कटतया परित्यक्तः, स्थापितश्च लोकहिताचार्यः श्रीजिनोदयैः। ततो मंत्रादिशक्तिमान् सरस्वतीपत्तनं गत्वा रूदेलीयागणेशपार्श्वे प्राप्तमंत्रो जिनेश्वरनामा सं० १४२२ जज्ञे। यतो वेगडागच्छः।

१९. श्रीजिनराजसूरिः। मुखाधीत ३६ सहस्रन्यायग्रन्थः। स्वर्णप्रभाचार्य१, भुवनरत्नाचार्य २, सागरचंद्राचार्य ३ स्थापकः, सं० १४६१ देवलवाटके स्वर्गगतः।

—सं० १४६१देवलवाटके सा० नाल्हाकारित नंद्यां सागरचंद्राचार्य स्थापितेभ्यः कृतप्राच्यादि देशविहारेभ्यः संघगणोन्नतिकारिभ्यो जेसलमेरौ उत्थापित क्षेत्रपालदर्शित तुर्यव्रतशंकया तैरेव पृथक्कृतेभ्यः श्रीजिनवर्धनसूरिभ्यः पींपलियागणो जातः।

ततश्च वा० शीलचंद्रगणिपार्श्वे पठितानेकश्रुता भाणशोलियाग्रामे सा० नाल्हाकारितनंद्यां सागरचंद्राचार्यैरेव स्थापिताः आबूगिरिनारजेसलमेर्वादिषु प्रासादोपदेशकाः भावप्रभ—कीर्तिरत्नाचार्यादि स्थापकाः भांडागारादि लेखकाः श्रीजिनभद्रसूरयः कुंभलमेरौ सं० १५१४ स्वः प्राप्ताः।

२०. श्रीजिनचंद्रसूरयः। चम्मगोत्रीयाः। पत्तने सा० समरसिंह करितनंद्यां श्रीकीर्तिरत्नाचार्यैः स्थापिताः। अर्बुदाचले नवफणपार्श्वप्रतिष्ठापकाः। श्रीधर्मरत्न—श्रीगुणरत्नाचार्यादिमहापदकर्तारः कर्मग्रन्थवेत्तारश्च। ५०

वर्षसर्वायुषः। स्वयंज्ञातावसाना जेसलमेरौ सप्रभावस्तूपा अभुवन् सं० १५३७।

२१. श्रीजिनसमुद्रसूरयः। परीक्षगोत्रे वाग्भटमेरौ देका-देवलदेसुताः। पुंजपुरे मंडपतः समागतः। मउठीया श्रीमालसोनपालकारितनंद्यां श्रीजिनचंद्रसूरिस्थापिताः। साधितपंचनदिसोमरादियक्षाः। महाचारित्रिणोऽहम्मदावादे सं० १५५५ स्वर्गं ययुः।

२२. तत्पट्टे श्रीजिनहंससूरयः। संघवीमेघराज भार्या महिगलदे नंदनाः। श्रीजेसलमेरौ गृहीतदीक्षाः। तदनुक्रमेण सं० १५५६ ज्येष्ठसुदि ९ रवौ श्रीविक्रमपुरे मंत्रीश्वरकर्मसिंहप्रेषिताः कारणवशतः श्रीराजधान्यास्तत्रप्रभूताः पीरोजीलक्ष १ व्ययनिर्मितमहाविस्तरनंद्यां श्रीशांतिसागराचार्यदत्तसूरिमंत्रास्तदानीमकालजलदवर्षणसंतुष्टसर्वलोकेभ्यः प्राप्तश्लाघाः। पूर्वं वा० धर्म्मरंगाभिधाः श्रीजिनहंससूरयस्ते चाऽन्यदा आगरातो भ्रातृवेगराज पोमदत्तालंकृता सं० डूंगरसीप्रहिता कारणेन विहरंतः प्राप्ता आगरास्थाने। तत्र च तेन संमुखानीताऽनेकसिंधुरसर्वसंघमालिक-उंबराववाद्यमाननिःस्वनाद्यातोद्यादिविस्तारपूर्वं प्रवेशोत्सवे कृते पिशुनकृतविकृत्या पातिसाहिशकंदराऽऽदेशतो धवलपुरे ३६ मासान् रोधेन रक्षिता अपि स्वध्यानबलेन समागतक्षेत्रपालश्रीजेसलमेर्वांय संभवनाथाधिष्टायककृतसाहाय्याः तेनैव स्वयं ५०० वंदिजनैः सह मुक्ताः स्थापितानेकपाठकवाचनाचार्याः प्रतिष्ठात्रयकर्तारः। तदवसरे सं० १५६६ वर्षे केनापि हेतुनाऽहूतैर्गीतार्थशिरोमणिभिरपि श्रीशांतिसागराचार्यैरेव स्थापिताः स्वशिष्याः श्रीजिनदेवसूरयः। तद्गच्छः पृथग् जज्ञे वडाआचार्यीयाः। ततो बहुकालं स्वगच्छं प्रभाव्य वर्ष ५७ सर्वायुषः श्रीपत्तने सं० १५८२ सावधाना एव स्वर्ययुः।

२३. तत्पट्टे श्रीजिनमाणिक्यसूरयः। चोपडागोत्रे सं. राउलरयणादे तनयाः तरेवे(?) सं० १५८२ स्वहस्त कमल स्थापिता बलाहीदेवराजेन कृतसविस्तरनंदीमहसः। कृतगुर्जराद्यनेकदेशविहाराः संस्थापितानेकोपाध्यायवाचनाचार्यवराः। सातिशयाः। ध्यानबलेन जेसलमेर्वागतमुद्गलसैन्योपद्रवनिवारकाः। क्रमेण देवराजपुरस्थ श्रीजिनकुशलसूरियात्रां विधाय परावर्तमाना देवराजपुरात् पंचविंशति क्रोशे स्वयं दर्शितस्वोपद्रवाः कृतानशनाः तत्रैव सं० १६१२ वर्षे आषाढसुदि ५ स्वर्गलोकं प्राप्ताः।

२४. तत्पट्टे श्रीजिनचंद्रसूरयः। रीहडगोत्रे सा. सिरिवन्त सिरियादे सुताः। सं० १५९५ जन्म। सं० १६०४ दीक्षा। सं० १६१२ वर्षे भाद्रपद ९ दिने गुरुवारे श्रीजेसलमेरुनगरे राउल श्रीमालदेकृत महोत्सवे भट्टारक श्रीजिनचंद्रसूरिः स्थापितः। सं० १६१३ वर्षे श्रीविक्रमनगरे चैत्रमासे सप्तमीदिने क्रियोद्धारः कृतः। तेषां त्वेतेऽवदाताः श्रीफलुधां ताद्य–चैत्यतालकोद्घाटकृत्, पुनः सं० १६४३वर्षे ताद्य–धर्म्मसागरकृतग्रंथच्छेदकृत्, श्रीअकबरसाहिप्रतिबोधकारी, तत् साहिवचसा युगप्रधानपदधारी, सं० १६५२ वर्षे नानगानीकृत महोत्सवेन पंचनदीनां साधकः। सिंधु१, वयष २, वनाह ३, रावी ४, घारउ ५, इति पंच नद्यः; तथा स्तंभतीर्थे वर्ष यावत् मीनरक्षाकृत्; श्रीज्येष्ठपर्वणि सर्वत्राष्ट दिनानि यावदमारि प्रवर्तकः; श्रीशत्रुंजयादि तीर्थेषु चैत्यप्रतिमा प्रतिष्ठाकृत्; श्रीविक्रमपुरे ऋषभबिंबादिप्रभूत-

बिंबप्रतिष्ठाकृत्‌। श्रीसाहिसलेमराज्ये ताघकृत्‌ श्री जिनशासनमालिन्यतः श्रीसाधुविहारो निषिद्धः साहिना तत्रावसरे श्रीउग्रसेनपुरे गत्वा साहिं प्रतिबोध्य च साधूनां विहारः स्थिरीकृतः। तदा लब्धसवाई युगप्रधान वडागुरुरितिविरुदो येन गुरुणा। एवमवदाता भूयांसः संति सुप्रसिद्धाः। तेषां निर्वाणं श्रीबीलाडापुरे सं० १६७० वर्षे आसूवदि २ दिने स्तूपस्थापना। तस्य वारके श्रीसागरचंद्रसूरिसंताने अनुक्रमेण भावहर्षसूरयो निर्गता इति।

२५. तत्पट्टे श्रीजिनसिंहसूरिः। चोपडागोत्री कोटिद्रव्यव्ययेन मंत्रिराज श्री कर्म्मचंद्रेण कृतनंदीमहोत्सवः श्रीलाभपुरे। तन्निर्वाणं तु श्रीमेदतटे सं० १६७४ वर्षे पोसवदि १३दिने।

२६. तत्पट्टे गुरुश्रीजिनराजसूरिः। सं. १६७४ वर्षे फागुणसुदि ७ दिने संघपति श्री आसकर्णेन कृतनंदीमहोत्सवः। तस्मिन्नेव दिने श्री जिनसागरसूरीणामाचार्यपदस्थापनेति। कीयत्‌ काले निर्वासिताः। श्रीमज्जिनराजसूरिः।

२७. तस्य पट्टे श्रीजिनरत्नसूरिः। श्रीजिनरत्नसूरिवारके श्रीरंगविजयो निर्वासितः।

२८. श्रीजिनचंद्रसूरिश्चिरं जीयात्‌ ॥



॥ खरतरगच्छ पट्टावली ॥

[२]

प्रणिपत्य जगन्नाथं वर्धमानं जिनोत्तमम् । गुरूणां नामधेयानि लिख्यन्ते स्वविशुद्धये ॥

१. इह तावत् त्रिभुवनजनोपकर्ता, सकलपापसंतापहर्ता, परमशिवंकरः, चरमतीर्थंकरः, पञ्चमगतिगामी श्रीमहावीरस्वामी संजातः । स च इक्ष्वाकुकुलसमुद्भवः, काश्यपगोत्रीयः, क्षत्रियकुण्डग्रामनगराधीश्वरः, सिद्धार्थस्य राज्ञः त्रिशलाराज्ञ्याश्च पुत्रः, चैत्र शु० दि० त्रयोदश्यां जातजन्मा । तस्य महावीरस्य चतुर्दशसहस्रप्रमिताः साधवः, षट्त्रिंशत्सहस्रप्रमिताः साध्व्यः, एकोनषष्टि (५९) सहस्राधिकैकलक्षप्रमाणाः श्रावकाः, अष्टादशसहस्राधिकलक्षत्रयप्रमाणाः श्राविकाश्च बभूवुः । तथा पुनर्नव गच्छाः, एकादश गणधराः संजाताः । स भगवान् त्रिंशद् वर्षाणि यावत् गृहवासे स्थित्वा, एकपक्षाधिकानि सार्धद्वादश (१२) वर्षाणि छद्मस्थपर्यायम्, पक्षाधिकषण्मासन्यूनानि त्रिंशद् वर्षाणि केवलिपर्यायं च प्रपाल्य—सर्वायुर्द्विसप्तति (७२) वर्षाणि पूरयित्वा चतुर्थारकस्य त्रिषु वर्षेषु सार्धाष्टमासेषु शेषेषु विद्यमानेषु पापायां नगर्यां कार्तिकाऽमावास्यायां मुक्तिं प्राप्तः ।

—तत्पट्टे गौतमस्वामी, स च इन्द्रभूतिनामा गौतमगोत्रीयः, वसुभूतिब्राह्मणस्य पृथ्व्याश्च ब्राह्मण्याः पुत्रः, पञ्चाशद् वर्षाणि गृहवासे स्थित्वा, त्रिंशद् वर्षाणि छद्मस्थपर्यायम्, द्वादश वर्षाणि केवलिपर्यायं च प्रपाल्य—सर्वायुर्द्विनवति (९२) वर्षाणि पूरयित्वा वीरनिर्वाणाद् द्वादशवर्षव्यतिक्रमे मोक्षं प्राप्तः । किञ्च, गौतमस्वामिदीक्षिताः सर्वेऽपि साधवः केवलज्ञानं संप्राप्य मुक्तिमेव गताः न पश्चादेकोऽपि स्थितः तेन अग्रे गौतमस्वामिपरंपरा न व्यूढाः, अत एवाऽयं पट्टेषु न गण्यते । तथा 'पञ्चमारकप्रान्ते दुष्प्रसहसूरिं यावत् सुधर्मणः परंपरा स्थास्यति' इति वीरवाक्याद् अन्यैरपि सुधर्मस्वामिवर्जितैर्नवगणधरैर्निजनिजशिष्यसन्ततिं सुधर्मस्वामिने समर्प्य अनशनं कृत्वा मुक्तिश्रीर्वृता ।

इह वीरज्ञानोत्पत्तितश्चतुर्दश वर्षैः जमालिनामा प्रथमो निह्नवो जातः, तथा षोडशवर्षैस्तिष्यगुप्तनामा द्वितीयो निह्नवो जातः ।

२. अथ वीरस्वामिपट्टे सुधर्मस्वामी संजातः, कोल्लाकग्रामवासी, अग्निवैश्यायनगोत्रः, धम्मिल्लस्य पितुर्भद्दिलायाश्च मातुः पुत्रः । पञ्चाशद् (५०) वर्षाणि गृहे, द्विचत्वारिंशद् (४२) वर्षाणि छद्मस्थभावे, अष्ट (८) वर्षाणि केवलित्वे च स्थित्वा—सर्वायुर्वर्षशतं (१००) प्रपाल्य वीरनिर्वाणाद् विंशति (२०) वर्षव्यतिक्रमे शिवश्रियं प्राप ।

३. तत्पट्टे श्रीजम्बूस्वामी, स च पञ्चमस्वर्गाच्च्युत्वा राजगृहनगर्यां काश्यपगोत्रीय—ऋषभदत्तनामा श्रेष्ठी, धारणी भार्या, तयोः पुत्रत्वेन उत्पन्नः । एकदा समये सुधर्मस्वामिपार्श्वे धर्मं श्रुत्वा, वैराग्यं प्राप्य, स्वगृहं चागत्य रात्रौ नवपरिणीता अष्टौ कन्याः प्रतिबोधयन्, तालोद्घाटिनीविद्यासंपन्नं चौरपञ्चशतीपरिवृतं चौर्यार्थं गृहे प्रविष्टं प्रभवनामानं राजकुमारं

प्रतिबोधितवान् । ततः प्रभाते अष्टौ (८) कन्याः, अष्टौ (८) तासां मातरः, अष्टौ (८) च पितरः, स्वस्य मातापितरौ (२) च–एवं २६, तथा चौरपञ्चशतीसहितः प्रभवः (५०१)–सर्वे (५२७), तैः सह जम्बूकुमारो दीक्षां जग्राह । तथा नवनवति (९९) कोटिस्वर्णमुद्राणाम्, अष्टकन्यानां च परित्यागी बभूव । स च षोडश (१६) वर्षाणि गृहे, विंशति (२०) वर्षाणि छद्मस्थभावे, चतुश्चत्वारिंशद् (४४) वर्षाणि केवलिपर्याये च स्थित्वा–अशीतिर्वर्षाणि (८०) सर्वायुः प्रपाल्य, वीराच्चतुष्षष्टि (६४) वर्षव्यतिक्रमे मोक्षं गतः, चरमकेवली जातः । तथा जम्बूस्वामिनि मुक्तिं गते दशवस्तुविच्छेदो जातः । तथाहि–१. मनः पर्यायज्ञानम्, २. परमावधिज्ञानम्, ३. पुलाकलब्धिः, ४. आहारकशरीरम्, ५. क्षपकश्रेणिः, ६. उपशमश्रेणिः, ७. जिनकल्पिमार्गः, ८. परिहारविशुद्धिः, सूक्ष्मसंपरायम्, यथाख्यातचरित्रम्, ९. केवलज्ञानम्, १०. सिद्धिगमनं चेति ।

४. तत्पट्टे प्रभवस्वामी, स च जयपुरवासिनो विन्ध्यस्य राज्ञः पुत्रः, कात्यायनगोत्रीयः, त्रिंशद् (३०) वर्षाणि गृहे, चतुश्चत्वारिंशद् (४४) वर्षाणि सामान्यव्रते, एकादश (११) वर्षाणि आचार्यपदे स्थित्वा–सर्वायुः पञ्चाशीति (८५) वर्षाणि प्रपाल्य वीरात् पञ्चसप्तति (७५) वर्षव्यतिक्रमे स्वर्गं जगाम ।

५. तत्पट्टे शय्यंभवसूरिः, स च राजगृहवास्तव्यो वात्स्यगोत्रीयः, एकदा यज्ञं कुर्वन् श्रीप्रभवस्वामिप्रेषितसाधुद्वयमुखाद् 'अहो ! कष्टं २, तत्त्वं न ज्ञायते परम्' इति वचनं श्रुत्वा संजातसंशयः स्वगुरुं प्रति खड्गमुत्पाट्य तत्त्वं पप्रच्छ । तदानीं तेन गुरुणा प्रोक्तम् 'यज्ञस्तम्भस्य अधो वर्तमानं शान्तिनाथबिम्बमस्ति, इति तत्त्वम्' ततस्तद्दर्शनाद् जैनधर्मे संजातरुचिः शय्यंभवभट्टः सगर्भां स्त्रियं मुक्त्वा प्रभवस्वामिपार्श्वे व्रतं जग्राह । क्रमेण 'योग्योऽयम्' इति ज्ञात्वा गुरुभिराचार्यपदे स्थापितः । अथ पश्चात् संजातजन्मनः, कदाचित् स्वपार्श्वे समागतस्य मनकनाम्नो निजपुत्रस्य षण्मासावधि आयुर्ज्ञात्वा तन्निमित्तं सिद्धान्तादुद्धृत्य दशवैकालिकशास्त्रं कृतवान्, ततः संघाग्रहेण आगामिकालभाविप्राणिनामनुकम्पया च सूरिभिः स ग्रन्थो न पश्चात् प्रक्षिप्तः । तथा श्रीशय्यंभवसूरिरष्टाविंशति वर्षाणि गृहे, एकादश (११) वर्षाणि सामान्यव्रते, त्रयोविंशति (२३) वर्षाणि सूरिपदे स्थित्वा–सर्वायुर्द्विषष्टि (६२) वर्षाणि प्रपाल्य वीराद् अष्टानवति (९८) वर्षैः स्वर्गभाग् जातः ।

६. तत्पट्टे श्रीयशोभद्रसूरिः, स च तुङ्गीयायनगोत्रीयो द्वाविंशति (२२) वर्षाणि गृहे, चतुर्दश (१४) वर्षाणि सामान्य व्रते, पञ्चाशद् (५०) वर्षाणि आचार्यपदे–सर्वायुः षडशीति (८६) वर्षाणि प्रपाल्य वीराद् अष्टचत्वारिंशदधिकैकशत (१४८) वर्षव्यतिक्रमे स्वर्गभाक् ।

७. तत्पट्टे सप्तम श्रीसंभूतिविजयः, स च माठरगोत्रीयो द्विचत्वारिंशद् (४२) वर्षाणि गृहे, चत्वारिंशद् (४०) वर्षाणि सामान्यव्रते, अष्टौ (८) वर्षाणि युगप्रधानत्वे स्थित्वा सर्वायुर्नवति (९०) वर्षाणि प्रपाल्य वीरात् षट्पञ्चाशदधिकैकशत (१५६) वर्षातिक्रमे दिवं गतः ।

८. तत्पट्टे द्वितीयो लघुगुरुभ्राता भद्रबाहुस्वामी तु प्राचीनगोत्रीयः, प्रतिष्ठानपुरवासी, तथा

व्यन्तरीभूताऽविनीतनिज-बन्धुवराहमिहिरकृतसंघोपद्रवनिवारणार्थमुपसर्गहरस्तोत्रकरणेन प्रवचनस्य महोपकारकृत्, तथा पुनश्चतुर्दशपूर्ववित्, कल्पसूत्र—आवश्यकनिर्युक्त्यादिप्रभूतग्रन्थकारसंजातः। स च पञ्चचत्वारिंशद् (४५)वर्षाणि गृहे, सप्तदश (१७) वर्षाणि सामान्यव्रते, चतुर्दश १४ वर्षाणि युगप्रधानत्वे स्थित्वा—सर्वायुः षट्सप्तति (७६) वर्षाणि प्रपाल्य वीरात् सप्तत्यधिकैकशत (१७०) वर्षव्यतिक्रमे स्वर्गभाक्।

९. तत्पट्टे नवमः स्थूलभद्रस्वामी, स च पाटलिपुत्रनगरे नवमनन्दभूपस्य मन्त्री शकडालः, भार्या लाछलदेवी, तयोः पुत्रः, गौतमगोत्रीयः, कोश्याप्रतिबोधकः, सर्वजनप्रसिद्धः, चतुर्दशपूर्वविदां चरमः, तत्र दश पूर्वाणि वस्तुद्वयेन न्यूनानि सूत्रतोऽर्थतश्च पपाठ, अन्त्यानि चत्वारि पूर्वाणि तु सूत्रतएव अधीतवान् नाऽर्थतः, इति वृद्धवादः। स त्रिंशद (३०) वर्षाणि गृहे, विंशति (२०) वर्षाणि सामान्यव्रते, एकोनपञ्चाशद् (४९) वर्षाणि सूरिपदे स्थित्वा—नवनवति (९९) वर्षाणि सर्वायुः प्रपाल्य वीराद् एकोनविंशत्यधिकाद्विशतवर्षैः (२१९) स्वर्गं प्राप्तः।

—अत्रान्तरे वीरनिर्वाणात् चतुर्दशाधिकद्विशत (२१४) वर्षैः आषाढाचार्याद् अव्यक्तनामा तृतीयो निह्नवो जातः। तथा विंशत्यधिकद्विशत (२२०) वर्षैरश्वमित्रात् सामुच्छेदिकनामा चतुर्थो निह्नवः। तथा पुनरष्टाविंशतिअधिकद्विशत (२२८) वर्षैः गङ्गनामा एकस्मिन् समयेऽनेकक्रियोपयोगवादी पञ्चमो निह्नवोऽभूत्।

१०. तत्पट्टे दशम आर्यमहागिरिः, एलापत्यगोत्रीयो जिनकल्पिकतूलनामारूढः, पुनस्त्रिंशद् (३०) वर्षाणि गृहे, चत्वारिंशद् (४०) वर्षाणि सामान्यव्रते, त्रिंशद् (३०) वर्षाणि सूरिपदे—सर्वायुर्वर्षशतं (१००) प्रपाल्य स्वर्गभाक्।

११. तत्पट्टे आर्यसुहस्तिसूरिः। वासिष्ठगोत्रीयः। तेन किल पूर्वभवे द्रमकीभूतः संप्रतिजीवः प्रव्राज्य त्रिखण्डाधिपतित्वं प्रापितः, येन संप्रतिना श्रीवीरात् पञ्चत्रिंशदधिकद्विशतवर्षैः राजपदं प्राप्य सपादलक्षप्रतिमा—नवीनजिनप्रासादाः कारिताः, सपादकोटिबिम्बानि कारयित्वा प्रतिष्ठापितानि, त्रयोदशसहस्रप्रमितजीर्णोद्धाराः कारिताः, पञ्चनवतिसहस्रप्रमाणाः पित्तलकाः प्रतिमाः कारिताः, सप्तशतानि सत्रागारा मण्डिताः, द्विसहस्रप्रमिता धर्मशालाः कारिताः, पुनर्यः प्रतिदिनं नवीनोत्पादितैकचैत्यवर्धापनिकां श्रुत्वा दन्तधावनं कृतवान्। किंबहुनोक्तेन, यस्त्रिखण्डामपि मेदिनीं जिनगृहप्रतिमादिभिर्मण्डितामकरोत्। तथा साधुवेषधारिनिजकिंकरजनप्रेषणेन अनार्यदेशेऽपि साधुविहारं कारितवान्। श्रीश्रेणिकस्य राज्ञः सप्तदशे पट्टे संजातः। तथा श्रीगुरुभिरन्येऽपि अवन्तीसुकुमालाद्या बहवो भव्याः प्रतिबोधिताः। ते च गुरवः त्रिंशद् (३०) वर्षाणि गृहे, चतुर्विंशति (२४) सामान्यव्रते, षट्चत्वारिंशद् (४६) वर्षाणि सूरिपदे—सर्वायुरेकं वर्षशतं (१००) प्रपाल्य श्रीवीरात् पञ्चषष्ट्यधिकवर्षशतद्वये (२६५) व्यतिक्रान्ते स्वर्गभाजो जाताः।

१२. श्रीआर्यसुहस्तिपट्टे श्रीसुस्थितसूरिः, स च कोटिशः सूरिमन्त्रजापात् 'कोटिकः,' पुनः काकन्द्यां नगर्यां जातत्वात् ' काकन्दिकः ' इति बिरुदप्रायं विशेषणद्वयम्। तथा व्याघ्रापत्यगोत्रियः, स च एकत्रिंशद् (३१) वर्षाणि गृहे, सप्तदश (१७)वर्षाणि सामान्यव्रते, अष्टचत्वारिंशदे

(४८) वर्षाणि सूरिपदे—सर्वायुः षण्णवति (९६) वर्षाणि प्रपाल्य वीरात् त्रयोदशाधिकवर्षशतत्रये (३१३) व्यतीते स्वर्गभाग् जातः। तत एव अस्माकं संप्रदायः 'कोटिकगच्छः' इति प्रसिद्धः।

१३. सुस्थितसूरिपट्टे इन्द्रदिन्नसूरिः

१४. तत्पट्टे श्रीदिन्नसूरिः। १५. तत्पट्टे श्रीसिंहगिरिर्जातिस्मरणज्ञानवान्।

—अत्रान्तरे पादलिप्ताचार्यो वृद्धवादिसूरिश्च बभूवतुः, तथा सिद्धसेनदिवाकरोऽप्यासीत्, येन उज्जयिन्यां महाकालप्रासादे रुद्रलिङ्गं स्फोटयित्वा कल्याणमन्दिरस्तवेन पार्श्वनाथबिम्बं प्रकटीकृतम्। विक्रमादित्यश्च प्रतिबोधितः। विक्रमराज्यं तु श्रीवीरात् सप्तत्यधिकवर्षशतचतुष्टये (४७०) व्यतीते संजातम्। विक्रमादित्यराजा वीरात् (४७०) वर्षे जातः।

१६. तत्पट्टे श्रीवज्रस्वामी, यो बाल्यादपि जातिस्मरणभाक्, गौतमगोत्रीयः, तुम्बवनग्रामवासी धनगिरि—सुनन्दयोः पुत्रः, श्रीसिंहगिरिसूरीणां हस्ताद् दीक्षां गृहीत्वा, तत्पार्श्वे एकादशाङ्गानि अधीत्य, द्वादशस्य दृष्टिवादाङ्गस्य अध्ययनाय दशपुराद् उज्जयिन्यां श्रीभद्रगुप्ताचार्यसमीपं ययौ। तत्र गुरुभिर्दश पूर्वाणि पाठितानि। पुनर्य आकाशगामिविद्यया संघरक्षाकृत्, दक्षिणस्यां दिशि बौद्धराज्ये जिनेन्द्रपूजानिमित्तं पुष्पाद्यानयनेन प्रवचनप्रभावनाकृत्, देवाऽभिवन्दितः, दशपूर्वविदामपश्चिमः, तथा षण्णवत्यधिकचतुश्शत (४९६) वर्षान्ते जातः, अष्टौ वर्षाणि गृहे, चतुश्चत्वारिंशद् (४४) वर्षाणि सामान्यव्रते, षट्त्रिंशद् (३६) वर्षाणि सूरिपदे—सर्वायुरष्टाशीति (८८) वर्षाणि प्रपाल्य श्रीवीरात् चतुरशीतिअधिकपञ्चशत (५८४) वर्षान्ते स्वर्गभाक्। इतो वज्रशाखा संजाता। तथा वज्रस्वामितो दशपूर्व—चतुर्थसंहननादिव्युच्छेदः।

—अत्र श्रीवीरात् (५४४) वर्षे रोहगुप्तात् त्रैराशिकः षष्ठो निह्नवो जातः।

—तथा वीरात् सपादपञ्चशतवर्षातिक्रमे (५२५) शत्रुञ्जयोच्छेदो जातः, ततः सप्तत्यधिकपञ्चशत (५७०) वर्षैर्जावडोद्धारोऽभूत्।

१७. तत्पट्टे श्रीवज्रसेनाचार्यः, स च उत्कोशिकगोत्रीयः। एकदा द्वादशदुर्भिक्षान्ते श्रीवज्रस्वामिवचनात् सोपारके गत्वा जिनदत्तश्रेष्ठी, तद्भार्या ईश्वरीनाम्नी, तया लक्षमूल्येन धान्यमानीय पाकार्थमग्नौ स्थापितायां हण्डिकायां विषनिक्षेपं क्रियमाणं दृष्ट्वा, 'प्रातः सुकालो भावी' इत्युक्त्या विषनिक्षेपं निवार्य नागेन्द्र—चन्द्र—निर्वृति—विद्याधर—नामकांश्चतुरः सकुटुम्बानिभ्यपुत्रान् प्रव्राजितवान्। तेभ्यश्च स्वस्वनामाङ्कितानि चत्वारि कुलानि जातानि। स श्रीवज्रसेनसूरिः प्रान्ते चन्द्रमुनिं स्वपदे नि॰श्य, अनशनं च विधाय स्वर्गभाक्।

१८. तत्पट्टे श्रीचन्द्रसूरिः, स च सप्तत्रिंशद् (३७) वर्षाणि गृहे, त्रयोविंशति (२३) वर्षाणि सामन्यव्रते, सप्त (७) वर्षाणि सूरिपदे—सर्वायुः सप्तषष्टिवर्षाणि (६७) प्रपाल्य स्वर्गभाक्। इतश्चान्द्रकुलमिति प्रसिद्धम्, अत एवाऽस्माकं गच्छेऽधुनाऽपि बृहद्दीक्षावसरे "अम्हाणं कोडिओ गणो, वयरी साहा, चं॰ कुलं, अमुगगणनायगा, अमुगमहोज्झाया संति, महत्तरा नत्थि' इति पाठं नवीनशिष्यं प्रति आचार्यपार्श्वस्थिता वृद्धाः श्रावन्ति ' इति संप्रदायः।

—अत्राऽवसरे श्रीआर्यरक्षितसूरिर्महाप्रभावकः संजातः, स च दशपुरनगरे सोमदेवः पुरोहितः, रुद्रसोमा भार्या, तयोः पुत्रः साधिकनवपूर्वाणि वज्रस्वामितोऽधीत्य निजकुटुम्बं समग्रमपि प्रतिबोध्य जिनशासनप्रभावनाकृज्जातः। तच्छिष्यः श्रीदुर्बलिकापुष्पमित्रसूरिर्बभूव। अत्रान्तरे वीरात् (५८४) वर्षे गोष्ठामाहिलः सप्तमो निह्नवो जातः। तथा (६०९) वर्षैर्दिगम्बरोत्पत्तिः।

१९. ततः श्रीसमन्तभद्रसूरिर्वनवासी। २०. ततः श्रीदेवसूरिर्वृद्धः।

२१. ततः श्रीप्रद्योतनसूरिः। २२. ततः श्रीमानदेवसूरिः शान्तिस्तवकर्ता।

२३. ततः श्रीमानतुङ्गसूरिर्भक्तामर-भयहरणस्तोत्रयोः कर्ता।२४. ततः श्रीवीरसूरिर्जातः

—अत्रान्तरे श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणो महाप्रभावको जातः, स च वीरात् अशीत्यधिकनवशतवर्षैः (९८०) वल्लभीनगर्यां समस्तसाधुमीलनेन सर्वसिद्धान्तलेखकारी। देवर्द्धिं यावद् एकं पूर्वं स्थितमिति वृद्धसंप्रदायः।

—पुनस्तदैव श्रीकालिकाचार्यो जातः, स च वीरवाक्याद् भाद्रपदशुक्लपञ्चमीतश्चतुर्थ्यां श्रीपर्युषणापर्व आनीतवान्, ततएवाऽद्यापि चतुरशीतिगच्छेषु चतुर्थ्यां सांवत्सरिकप्रतिक्रमणं क्रियते। अयं च वीरात् त्रिनवत्यधिकनवशतवर्षैः (९९३), तथा विक्रमसंवत्सरात् त्रयोविंशत्यधिकपञ्चशतवर्षैः (५२३) संजातः।

—पुनः कालिकाचार्यद्वयं प्राग् जातम्, तत्राऽऽद्यः प्रज्ञापनाकृद् इन्द्रस्याग्रे निगोदविचारवक्ता श्यामाचार्यापरनामा, स तु वीरात् (३७६)वर्षैर्जातः। द्वितीयो गर्दभिल्लोच्छेदकः, स तु वीरात् (४५३) वर्षैर्जातः।

—पुनस्तदैव श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणो जातः, स च विशेषावश्यकादिभाष्यकर्ता। तच्छिष्यः शीलाङ्काचार्यः प्रथम-द्वितीयाङ्गवृत्तिकृत्।

तदैव पुनः श्रीहरिभद्रसूरिर्बभूव, स च जात्या ब्राह्मणः, सर्वशास्त्रपारगः सन् प्रतिज्ञां चक्रे 'यदुक्तस्यार्थमहं न वेद्मि तच्छिष्यो भवामि' इति। तत एकदा साध्वीमुखाद् एकां गाथां श्रुत्वा तदर्थमनवबुध्यमानः प्रतिज्ञावशात् साध्वीदर्शितगुरुसमीपे व्रतं जग्राह। जैनशास्त्राण्यपि सर्वाणि अधीत्य आचार्यत्वं प्राप्तः। तस्य हंस-परमहंसनामानौ द्वौ शिष्यौ परशासनरहस्यग्रहणार्थं बौद्धाचार्यसमीपं गतौ, तत्राऽध्ययनं कृत्वा, स्वपुस्तकं गृहीत्वा स्थानं प्रत्यगच्छन्तौ 'तौ जैनौ' इति ज्ञात्वा पश्चादागतैर्बौद्धैर्मारितौ। अथैतत् स्वरूपं विज्ञाय कोपाक्रान्तेन गुरुणा तप्ततैलपूरितं कटाहं स्थापयित्वा मन्त्रबलाच्चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशत (१४४४) बौद्धा आकर्षिताः, तदानीं याकिनीमहत्तरावचनैःकोपादुपशान्तेन गुरुणा बौद्धा मुक्ताः। ततः पापशुद्ध्यर्थमाकर्षितबौद्धप्रमाणानि (१४४४) पूजापञ्चाशकादिप्रकरणानि कृतानि। एवंविधाः श्रीहरिभद्रसूरयो जाताः।

२५. ततः (श्रीवीरसूरिपट्टे) श्रीजयदेवसूरिः। २६. ततः श्रीदेवानन्दसूरिः।

२७. ततः श्रीविक्रमसूरिः। २८. ततः श्रीनरसिंहसूरिः।

२९. ततः श्रीसमुद्रसूरिः। ३०. ततः श्रीमानदेवसूरिः।

३१. ततः श्रीविबुधप्रभसूरिः। ३२. ततः श्रीजयानन्दसूरिः।

३३. ततः श्रीरविप्रभसूरिः । ३४. ततः श्रीयशोभद्रसूरिः ।
३५. ततः श्रीविमलचन्द्रसूरिः । ३६. तत्पट्टे श्रीदेवसूरिः ।
—तस्य च सुविहितमार्गाचरणात् 'सुविहितपक्षगच्छ' इति प्रसिद्धिर्जाता ।
३७. तत्पट्टे नेमिचन्द्रसूरिः । ३८. तत्पट्टे उद्द्योतनसूरिः ।

—अस्माच्चतुरशीतिगच्छस्थापना जाता। तत्स्वरूपं यथा—एकदा श्रीउद्द्योतनसूरिं महा विद्वांसं शुद्धक्रियापात्रं च विज्ञाय अपरेषां त्र्यशीति (८३) संख्यानां स्थविराणां त्र्यशीतिशिष्याः पठनार्थं समागताः, तान् श्रीगुरुः सद्रीत्या पाठयति स्म। तस्मिन्नवसरे अम्भोहरदेशे स्थविरमण्डल्यां वृद्धस्य जिनचन्द्राचार्यस्य चैत्यवासिनः शिष्यो वर्धमाननामा सिद्धान्तमवगाहमानश्चतुरशीत्या (८४) ऽऽशातनाधिकारे आगते सति गुरुं प्रत्येवमुक्तवान्—'भोः! स्वामिन् ! चैत्ये निवसतामस्माकमाशातना न टलति, ततोऽयं व्यवहारो मे न रोचते' इत्युक्तं श्रुत्वा गुरुणा यथा यथा विप्रतारितोऽपि अयं स्वश्रद्धातो न परिभ्रष्टः। ततः श्रीउद्द्योतनसूरिं शुद्धक्रियावन्तं श्रुत्वा तत्पार्श्वे समागत्य तस्यैव शिष्यो जातः, तदुपसंपदं च गृहीतवान् । ततः श्रीगुरुभिर्योगादिकं वाहयित्वा सर्वे सिद्धान्ताः पाठिताः, क्रमेण योग्यं ज्ञात्वाऽऽचार्यपदं दत्वा, गच्छवृद्धयादिलाभं विज्ञाय उत्तराखण्डे विहारार्थमाज्ञा दत्ता। ततो वर्धमानाचार्योऽपि गुर्वादेशं स्वीकृत्य तत्र गतः। अथ श्रीउद्द्योतनसूरिस्त्र्यशीति (८३) शिष्यपरिवृतो मालवकदेशात् संघेन सार्धं शत्रुंजये गत्वा ऋषभेश्वरमभिवन्द्य पश्चाद् वलमानो रात्रौ सिद्धवडस्याधोभागे स्थितः, तत्र मध्यरात्रिसमये आकाशे शकटमध्ये बृहस्पतिप्रवेशं विलोक्य एवमुक्तवान्—'साम्प्रतमीदृशी वेला वर्तते, यतो यस्य मस्तके हस्तः क्रियते स प्रसिद्धिमान् भवति'। अथैतत् श्रुत्वा त्र्यशीत्याऽपि शिष्यैरुक्तम्—'स्वामिन् ! वयं भवतां शिष्याः स्मः, यूयमस्माकं विद्यागुरवः, ततोऽस्मदुपरि कृपां विधाय हस्तः क्रियताम्'। ततो गुरुभिरुक्तम्—'वासचूर्णमानीयताम्'। तदा तैः शिष्यैः काष्ठच्छगणादिचूर्णं कृत्वा गुरुभ्य आनीय दत्तम्, गुरुभिरपि तच्चूर्णं मन्त्रयित्वा त्र्यशीतेः शिष्याणां मस्तके निक्षिप्तम्, ततः प्रभाते श्रीगुरुभिः स्वस्य अल्पायुर्ज्ञात्वा तत्रैव अनशनं कृत्वा स्वर्गतिः प्राप्ता। अथ ते त्र्यशीतिरपि शिष्याः आचार्यपदं प्राप्य पृथग् विहारं चक्रु। अथैकः स्वशिष्यो वर्धमानसूरिः, त्र्यशीतिश्च इमेऽन्यदीयाः शिष्याः—एवं चतुरशीतिगच्छाः संजाताः।

३९. उद्द्योतनसूरिपट्टे श्रीवर्धमानसूरिः,स च षण्मासान् यावद् आचाम्लतपः कृत्वा,धरणेन्द्रं समाराध्य, श्रीसीमन्धरस्वामिपार्श्वे तं प्रेष्य सूरिमन्त्रं शुद्धं कारितवान्। तथा पुनरेकदा विहारं कुर्वन् सरसाख्ये पत्तने समाययौ। तस्मिन्नवसरे सोमब्राह्मणस्य द्वौ पुत्रौ शिवेश्वर—बुद्धिसागरनामानौ, एका च कल्याणवतीनाम्नी पुत्री, एवं त्रयोऽप्येते सोमेश्वरमहादेवस्य यात्रार्थं गच्छन्तः सरसाभिधाने पत्तने समाजग्मुः, तत्र सरस्वत्यां नद्यां स्नात्वा रात्रौ तत्रैव सुप्ताः, ततोऽर्धरात्रिवेलायां सोमेश्वरदेवः प्रादुर्भूय तेभ्य इत्युवाच—'भोः! प्रसन्नोऽहम्, मार्गयत मनोवाञ्छितं वरम्; ततस्तैर्वैकुण्ठे याचिते स प्राह—'भो ! ममाऽपि वैकुण्ठं नास्ति, ततो भवद्भ्यः कुतो ददामि,

परं यदि भवतां वैकुण्ठेच्छाऽस्ति, तर्हि श्रीवर्धमानसूरेश्चरणसेवा कार्या, स एव एको वैकुण्ठदाताऽस्ति' इत्युक्त्वा देवोऽदृश्यो बभूव। ततः प्रातःकाले ते त्रयोऽपि जना नद्यां स्नात्वा उपाश्रयमागत्य च गुरुभ्यो वैकुण्ठममार्गयन्। ततो गुरुभिरपि एकस्य भ्रातुर्मस्तकशिखायां स्थितां मत्स्यीं दर्शयित्वा, दयामयं श्रीजिनधर्मं द्योतयित्वा सर्वसिद्धान्तपारगाः कृताः। शिवेश्वरस्य जिनेश्वर इति नाम कृतम्। एकदा जिनेश्वरेण उक्तम्–'स्वामिन्! यदि गुर्जरदेशे गम्यते तदा भूयसी धर्मोन्नतिः स्यात्'। ततो गुरुभिरुक्तम्—'तत्र हीनाचारिणामसंयमिनां चैत्यवासिनां बहुः प्रचारोऽस्ति, ते उपद्रवं कुर्युः, ततस्तत्र न गम्यते।' तदा पुनर्जिनेश्वरेण उक्तम्—'स्वामिन्! यूकाभयात् किं वस्त्रं परित्यज्यते, ततो मह्यम्, बुद्धिसागराय च तत्र गमनार्थमाज्ञा दीयताम्।' अथ गुरुभिरपि एतत् श्रुत्वा जिनेश्वर–बुद्धिसागराभ्यामाचार्यपदं दत्त्वा गुर्जरदेशं प्रति विहाराज्ञा दत्ता। तावपि गुर्वाज्ञया तं देशं प्रति विहारं चक्रतुः। तथा गुरुभिः कल्याणवती साध्वी महत्तरा कृता। तथा पुनः श्रीवर्धमानसूरिभिस्त्रयोदशसुरत्राणच्छत्रोद्दालक–चन्द्रावतीनगरीस्थापक–पोरवाडज्ञातीय–श्रीविमलमन्त्रिणं प्रतिबोध्य श्रीअर्बुदाचले छिन्नजैनतीर्थस्य पुनः प्रवृत्त्यर्थमुपदेशो दत्तः परं तत्रत्यैर्ब्राह्मणैरुक्तम्—'इदमस्माकं तीर्थमास्ति, अत्र जिनप्रासादो न भवति' इति। ततो गुरुभिः पुष्पमालां मन्त्रयित्वा, विमलमन्त्रिणे दत्वा च प्रोक्तम्–'भो! मन्त्रिन्! ब्राह्मणकन्याहस्ते इमां मालां प्रदाय ब्राह्मणानामग्रे इति वक्तव्यम्–'अस्मिन् पर्वते य भूमौ एषा माला पतति, तत्र अस्माकं तीर्थमस्ति।' अथ मन्त्रिणा यथा गुरुभिरुक्तं तथैव कृतम्। ततश्च यत्र माला पतिता तत्र कलश–झल्लर्यादिपूजोपकरणसहितं प्रतिमात्रयं प्रादुर्भूतम्–तत्रैका वज्रमयी श्रीआदिनाथप्रतिमा, द्वितीया अम्बिकामूर्तिः, तृतीया वालीनाथक्षेत्रपालमूर्तिः–इति। अथैवं कृतेऽपि ब्राह्मणैः पुनरुक्तम्–'भवतां देवोऽस्ति,परं देवगृहं नास्ति, ततो देवस्यैव पूजा कार्या, देवगृहं तु न कारयितव्यम्'–इति। तदा विमलमन्त्रिणा द्रव्यबलेन विप्रा वशीकृताः, स्वर्णमुद्रास्तरणं विधाय भूमिं गृहीत्वा तत्र ऋषभदेवप्रासादः कारितः। अष्टादशकोटि–त्रिपञ्चाशल्लक्षप्रमितं द्रव्यं व्ययीकृतम्। तत्र अद्यापि 'विमलवसही' इति प्रसिद्धिरस्ति। ततः श्रीवर्धमानसूरिः सं० १०८८ प्रतिष्ठां कृत्वा प्रान्तेऽनशनं गृहीत्वा स्वर्गं गतः।

४०. तत्पट्टे श्रीजिनेश्वरसूरिः, स च बुद्धिसागरेण सार्धं मरुदेशाद् विहारं कृत्वा अनुक्रमेण गुर्जरदेशे अणहिल्लपुरपत्तने समागतः। तत्र दुर्लभराजस्य पुरोहितः शिवशर्मानामा ब्राह्मणः स्वमातुलोऽस्ति, तद्गृहं प्राप्तः। अथ स विप्रो बहूंश्छात्रान् तर्क–व्याकरणादि शास्त्राणि पाठयन् एकस्य वेदपदस्य अशुद्धमर्थमुवाच। तदा श्रीजिनेश्वरसूरिभिः प्रोक्तम 'अस्य पदस्य अयमर्थो न भवति, भवद्भिः कथमित्थं पाठयते?'। तदा विप्रेण उक्तम्–'भवतां वेदार्थपरिज्ञानं कुतः? चेद् भवेत् तर्हि भवद्भिरेव अस्य अर्थो वाच्य' इति। अथैतद् वचः श्रुत्वा गुरुभिर्ये केऽपि पुरोहितस्य संदेहा अभूवन् ते सर्वेऽपि निरस्ताः। ततः पुरोहितेन पृष्टम्–'को भवतां निवासः? कश्च भवतः पिता?' इति। तदा गुरुभिर्वाराणसी नगरी, सोमदत्तब्राह्मणश्च प्रोक्तम्। तदा

तेन ज्ञातम् एतौ मम भागिनेयौ, ततश्च बहुमानपुरस्सरं स्वगृहे रक्षितौ । अथैषा वार्ता चैत्यवासिभिः श्रुता, चिन्तितं च स्वचित्ते यतो जिनेश्वरसूरिरत्राऽऽगतोऽस्ति, स तु संवेगरङ्गनिमग्नगात्रः परमशुद्धक्रियापात्रमस्ति, वयं तु शिथिला हीनाचारिणः स्मः, ततोऽयं केनाऽपि प्रकारेण नगराद् निष्कासनीयः, अन्यथाऽस्माकं निन्दा भविष्यति, इत्येवं विचिन्त्य कियद्भिश्चैत्यवासिभिः संभूय दुर्लभनृपाय प्रोक्तम्–' महाराज ! अस्मिन् पुरे दिल्लीतो ग्रन्थिच्छोटकाः समागताः सन्ति, ते च भवत्पुरोहितस्य गृहे तिष्ठन्ति ' । अथ राज्ञा एतद् वाक्यं श्रुत्वा पुरोहितमाहूय पृष्टम्–'भवद्गृहे चौरा आगताः श्रूयन्ते' । तेनोक्तम्–' राजन् ! मद्गृहे तु शुद्धाचारवन्तः, सन्मार्गसंचारिणो मुनीश्वराः सन्ति, न चौराः । किंतु ये केऽपि तेषु चौरव्यपदेशं कुर्वन्ति त एव चौराः' । तदा राज्ञा आचारदर्शनार्थं जिनेश्वरसूरय आहूताः, आगता गुरवो राजसभायाम्, आस्तृतं वस्त्रं दूरीकृत्य, रजोहरणेन भूमिं प्रमार्ज्य, ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य, स्वकम्बलमास्तीर्य स्थिताः । अथैतत् सद्गुर्वालोकनाद् आनन्दितेन राज्ञा उक्तम्–' सन्मार्गधारका एवंविधा एव भवन्ति ' । तथा पुनर्भूपेन एतेभ्यो विरुद्धं चैत्यवासिनामाचारं दृष्ट्वा गुरुभ्यो मुनीनामाचारः पृष्टः । तदा जिनेश्वरसूरिभिः प्रोक्तम्–' अस्माभिर्मुखात् किं कथ्यते, भवतां देवाधिष्ठितं सरस्वतीभाण्डागारमस्ति, तत्र सर्वमतस्वरूपनिवेदकानि पुस्तकानि सन्ति, ततो निर्मलजलेन कृतस्नानां कुमारीं कन्यकां संप्रेष्य भाण्डागारात् पुस्तकमानायितव्यम् ' । तदा राज्ञा तथैव कृते सति दशवैकालिकपुस्तकं कन्याया हस्ते आगतम्, तच्च राजसभायामानीतम्, ततो गुरुभिः प्रोक्तम्–' इदं पुस्तकमेतेषां चैत्यवासिनामेव हस्ते देयम्, एते एव वाचयन्तु ' ततो। वाचयद्भिस्तैः साध्वाचारपत्राणि मुक्तानि, तदानीं गुरुभिरुक्तम्– ' राजसभायां दिवसे चौर्यं जायते '। राज्ञा पृष्टम्–'तत् कथम् ?' तदा तैरुक्तम्–'एभिः पत्राणि मुक्तानि !' राज्ञोक्तम्–'तर्हि यूयमेव वाचयत' । गुरुभिरुक्तम्–' नाऽत्र अस्माकं कार्यम्, पक्षपातरहितैर्ब्राह्मणैर्वाचनीयम्' । ततो ब्राह्मणेभ्यः पुस्तके दत्ते सति तैर्यथार्थं वाचितम् । तदा शास्त्राऽविरुद्धाचारदर्शनेन जिनेश्वरसूरिमुद्दिश्य 'अतिखराः' इति राज्ञा प्रोक्तम् । ततः 'खरतर' बिरुदं लब्धम् । तथा चैत्यवासिनो हि पराजयप्रापणात् 'कुंवला ।' इति नामधेयं प्राप्ताः। एवं सुविहितपक्षधारकाः जिनेश्वरसूरयो विक्रमतः१०८० वर्षैः 'खरतर' बिरुदधारका जाताः । तथा पुनरेकदा मरुदेवीनाम्नी साध्वी चत्वारिंशद् दिनानि यावदनशनं कृतवती, प्रान्ते निर्जरां कारयद्भिर्जिनेश्वरसूरिभिरुक्तम्–'स्वकीयमुत्पत्तिस्थानं ज्ञापनीयम्' ततः सा गुरुवचः स्वीकृत्य, कालं कृत्वा देवपदं प्राप्ता। अथैकदा स देवः सीमन्धरस्वामिवन्दनार्थं गच्छन् ब्रह्मशान्तियक्षं प्रत्युवाच–' भवता जिनेश्वरसूरीणां पार्श्वे गत्वा ' मसट सट' इत्येतानि पञ्चाक्षराणि कथनीयानि, एषामर्थं स्वयमेव गुरवो ज्ञास्यन्ति'-इति। तदा यक्षेणाऽऽगत्य तान्यक्षराणि कथितानि, ततो गुरुभिस्तेषामर्थो निगदितः । तद्यथा–

मरुदेवी नाम अज्जा गणिनी जा आसि तुम्ह गच्छम्मि ।
सग्गम्मि गया पढमे देवो जाओ महड्ढीओ ॥

टकलयम्मि विमाणे दो सागरआउसो समुप्पण्णो ।
समणेसस्स जिणेसरसूरिस्स इमं कहिज्जासु ।।
टकउरे जिणवन्दणनिमित्तामिहागएण देवेण ।
चरणम्मि उज्जमो भो कायव्वो किं च सेसेहिं ।।

एवंविधाः श्रीजिनेश्वरसूरयः प्रान्तेऽनशनं कृत्वा स्वर्गं गताः ।

४१.तत्पट्टे एकचत्वारिंशत्तमः श्रीजिनचन्द्रसूरिः, स च संवेगरङ्गशालाप्रकरणकर्ता। तथा पुनरेकदा दिल्लीनगरे समागतः, तत्र 'त्वं दिल्लीपतिर्भविष्यसि' इति प्रागुक्त-गुरुवचनस्मरणात् संप्राप्तविवेकेन मौजदीनसुरत्राणेन प्रवेशोत्सवः कृतः, तथा धनपालश्रीमालगृहे निवासः कारितः। तदानीं धनपालः श्रावको बभूव, तत्सम्बधिनोऽन्येऽपि बहवः श्रीमालगोत्रीयाः श्राद्धाः,प्रतिबोधिताः,केचिदन्यज्ञातीयराज्याधिकारिणोऽपि श्राद्धाः जाताः,तेभ्यः पातिसाहिना बहु महत्त्वं दत्तम्, ततस्तेषां 'महतीयाण' इति गोत्रस्थापना कृता। तद्गोत्रीयाः श्रावकाः 'जिनं नमामि, वा जिनचन्द्रगुरुं नमामि, नान्यम्' इति प्रतिज्ञावन्तो बभूवुः । एवंविधाः श्रीजिनचन्द्ररयो महाप्रभवका जाताः । तदैव च पद्मावत्या प्रत्यक्षीभूय प्रोक्तम्-'चतुर्थपट्टे सातिशयं 'जिनचन्द्र' इति नाम दातव्यमिति' । तत एवेयं व्यवस्था जाता ।

४२. तत्पट्टे द्विचत्वारिंशत्तमः श्रीअभयदेवसूरिः, स च जिनचन्द्रसूरीणां लघुगुरुभ्राता, परमसंवेगी च संजातः। तत्संबन्धो यथा-धारापुर्यां धननामा श्रेष्ठी,तद्भार्या धनदेवी, ततोऽभयकुमारनामा पुत्रो जातः । स चैकदा जिनेश्वरसूरीणां पार्श्वे धर्मं श्रुत्वा प्रतिबुद्धः। दीक्षां च जग्राह । क्रमेण सकलशास्त्राऽध्ययनेन गीतार्थो जातः, आ चार्यपदं च प्राप्तः । तत एकदा व्याख्याने शृङ्गारादिनवरसान् पोषितवान् तदा सभा सर्वाऽपि आनन्दातिशयसंपन्ना जाता। परं गुरुभिरेकान्ते उपालम्भो दत्तः । ततोऽभयदेवसूरिणाऽऽत्मशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्ते याचिते गुरुभिरुक्तुम्-'तक्रोपर्याऽऽगतजलेन ढुंभरकेण च षण्मासीं यावद् आचाम्लतपः कार्यम् । तदा पापभीरुणा अभयदेवसूरिणा गुरुवचसा तथैव कृतम् - षडपि विकृतयः परित्यक्ताः। परमत्यन्तनीरसाहारकरणात् प्राक्तनकर्मोदयाच्च शरीरे गलत्कुष्ठरोगः समुत्पन्नः। तथापि औषधं न करोति। ततः प्रवृद्धो रोगः, तदा अनशनचिकीर्षया गुरवः संघाग्रहेण धवलकाऽभिधाने नगरे प्राप्ताः। अथ त्रयोदश्या अर्धरात्रे शासनदेवतया प्रकटीभूय प्रोक्तम्-'स्वामिन् ! नवैताः सूत्रकुक्कुटिका उन्मोहय'। भगवानाह-'कराङ्गुलिगलनाद् उन्मोहयितुं न शक्नोमि'। तदा देवी प्राह-'अद्याऽपि त्वं चिरकालं वीरतीर्थं प्रभावयिष्यसि, नवाङ्गीवृत्तिं च विधास्यसि । ततो रोगगमनोपायं शृणु-स्तम्भनकपुरसमीपे सेढिकानदीतीरे खंखरपलाशतले श्रीपार्श्वनाथप्रतिमाऽस्ति, तत्र प्रत्यहमेका गौः समागत्य प्रतिमामूर्ध्नि क्षीरं क्षरति । तत्र संघेन सार्धं गत्वा स्तुतिः कर्तव्या । प्रतिमा प्रादुर्भविष्यति, तत्स्नात्रजलेन नीरुक् शरीरं भविष्यति' इत्युक्त्वा देवी अदृश्या बभूव । ततः प्रातः काले प्रत्यासन्ननगरग्रामेभ्यः समागतेन तद्ग्रामवासिना च श्रावकसंघेन सार्धं तत्र गत्वा ' जय तिहुयण ' इत्यादि नमस्कारद्वात्रिंशिका कृता । तत्र यावता ' फणफणकार ' इत्यादि षोडशकाव्येन स्तुतिः

प्रारब्धा, तावता पार्श्वप्रतिमा प्रकटीबभूव। ततः श्रावकैः स्नात्रपूजां कृत्वा स्नपनजलेन गुरुणां शरीरं सिक्तम्, तदा रोगनिर्मुक्ताः काञ्चनवर्णशरीराः सूरयो बभूवुः। ततः श्रावकैस्तत्र उत्तुङ्गतोरणं देवगृहं कारितम्। तदा श्रीअभयदेवसूरिभिः तत्र पार्श्वप्रतिमा स्थापिता। तच्च स्तम्भनकनाम्ना महातीर्थं प्रसिद्धम्। तथा 'जय तिहुयण' स्तोत्रस्य अन्तिमे गाथाद्वये धरणेन्द्र–पद्मावत्याऽऽकर्षणमन्त्रो गोपित आसीत्। तद् गाथाद्वयमपवित्रभूताः स्त्रीबालकादयो यत् किंचित् कार्येऽपि गुणयन्ति स्म, तदा पुनः पुनरागमनेन खिन्नयाऽधिष्ठायकदेव्या गुरवे उक्तम्–'स्वामिन्! एतद्गाथाद्वयं भाण्डागारे स्थापनीयम्, महति कार्ये गुणनीयम्। तथा इयं नमस्कारत्रिंशिका संध्यायां प्रतिक्रमणस्यादौ सदैव गुणनीया' इत्युक्त्वा देवी गता। ततो गुरुभिस्तथैव कृतम्। तथा नवाङ्गानां वृत्तयो विहिताः। एवंविधाः शासनप्रभावकाः श्रीअभयदेवसूरयः प्रान्ते गुर्जरदेशे कप्पडवणिजग्रामेऽनशनं कृत्वा चतुर्थं स्वर्गं प्राप्ताः।

४३. तत्पट्टे त्रिचत्वारिंशत्तमो जिनवल्लभसूरिः, स च प्रथमं कूर्चपुरगच्छीय-चैत्यवासिजिनेश्वरसूरेः शिष्योऽभूत्। ततश्चैकदा दशवैकालिकं पठन् सावद्यौषधादिकं कुर्वाणम्-अतिप्रमादिनं स्वगुरुं विलोक्य उद्विग्नचित्तः संजातः। तदनन्तरं स्वगुरुमापृच्छ्य शुद्धक्रियानिधीनामभयदेवसूरीणां पार्श्वेऽगात्। तदुपसंपदं गृहीत्वा तेषामेव शिष्यश्च संजातः। क्रमेण शास्त्राण्यऽधीत्य महाविद्वान् बभूव। तथा पिण्डविशुद्धिप्रकरण-गणधरसार्धशतक-षडशीति-प्रमुखाऽनेकशास्त्राणि कृतवान्। तथा दशसहस्रप्रमितवागडिकश्राद्धान् प्रतिबोधितवान्। तथा पुनश्चित्रकूटनगरे श्रीगुरुभिः चण्डिका प्रतिबोधिता। सूरिमन्त्रबलसघनीभूत साधारणश्राद्धेन कारितस्य द्विसप्तति (७२) जिनालयमण्डित श्रीवीरस्वामिचैत्यस्य प्रतिष्ठा कृता। तथा तत्रैव पुरे संवत् सागर-रस–रुद्र–(११६७) मिते श्रीअभयदेवसूरिवचनाद् देवभद्राचार्येण तेषां पदस्थापना कृता। ततस्ते षण्मासान् यावद् आचार्यपदं भुक्त्वा अनशनेन कालं कृत्वा स्वर्गं प्राप्ताः। तद्वारके च 'मधुकरखरतर' शाखा निर्गता। अयं प्रथमो गच्छभेदः। तथा शासनदेवतावचनात् तत एव आचार्यस्य नाम्न आदौ सप्रभावस्य जिनपदस्य स्थापना प्रवृत्ता।

४४. तत्पट्टे चतुश्चत्वारिंशत्तमः श्रीजिनदत्तसूरिः, स च वाछिगमन्त्रि–वाहडदेव्योः पुत्रः, धंधूकाभिधनगरवासी, हुंबडगोत्रीयः, सं० ११३२ वर्षे लब्धजन्मा, सोमचन्द्रमूलनामा, सं० ११४१ वाचक धर्मदेवपार्श्वे गृहीतदीक्षाकः, तथा सं० ११६९ वैशाख व० दि० षष्ठीदिने चित्रकूटनगरे श्रीदेवभद्राचार्येण सूरिमन्त्रं दत्त्वाऽऽचार्यपदे स्थापितः–'जिनदत्तसूरि' इति नामस्थापना कृता। परंतु प्रागेकदा सारंगपुरे कुंवरपालोपाध्यायस्य निर्जरा कारिता आसीत्। स हि कालं कृत्वा देवपदं प्राप्य तदानीमेव प्रादुर्भूय बभाषे 'भोः सोमचन्द्र! त्वमाचार्यपदं प्राप्स्यसि, परं मुहूर्तप्रायं वर्तते। तत्राद्ये मुहूर्ते मृत्युः, द्वितीये गच्छभेदः, तृतीयं शुभम्। ततस्तृतीये मुहूर्ते पदं ग्राह्यम्, इत्युक्त्वा देवोऽदृश्यो जातः परं कथंचित् दैववसात् द्वितीये मुहूर्त्ते पदं जातं, तेन संवत् १२०४ जिनशेखराचार्यतो रुद्रपल्ल्यां रुद्रपल्लीय–खरतर-शाखा भिन्ना। अयं द्वितीयो गच्छभेदः। पुनरेकदा श्री जिनदत्तसूरिश्चित्रकूट देवगृहे

वज्रस्थंभस्थितं नानामंत्राम्नायमयं पुस्तकं मंत्रबलेन प्रकटीकृत्य गृहीतवान्। तथोज्जयिन्यां महाकालप्रासादस्तंभस्थं, द्वितीयं सिद्धसेनदिवाकरस्य पुस्तकं प्रथमागतविद्ययाऽऽकृष्य जग्राह। तथा एकदा उज्जयिन्यां व्याख्यानमध्ये श्राविकारूपं विधाय छलनार्थमागताश्चतुःषष्टियोगिन्यः पट्टकेषु निवेश्य मंत्रबलेन कीलिताः, ततो व्याख्यानांते पट्टकेभ्य उत्थातुमशक्ताः सत्यो गुरुं प्रत्यूचुः—स्वामिन्! भवता वयं प्रत्युत च्छलिताः, अथ कृपां विधाय विमोच्यास्तदा गुरुभिर्वचनं गृहीत्वा योगिन्यो मुक्ताः। अथ ताभिर्वरं सप्तकं दत्तं तद्यथा—

१ प्रतिग्रामं खरतर श्राद्धो दीप्तिमान् भविष्यति।
२ प्रायेण खरतर श्रावको निर्धनो न भावी।
३ संघे कुमरणं न भविष्यति।
४ अखंड शीलपालका साध्वी ऋतुमती न भविष्यति।
५ खरतर श्राद्धः सिंधुदेशं गतः सन् धनवान् भावी।
६ खरतर संघं शाकिन्यादयो न छलिष्यंति।
७ जिनदत्तनाम्नि गृहीते विद्युत्पातादिरुपद्रवो न भावी।

इति। पुनर्योगिनीभिरुक्तं—एतद्वचनसप्तकं पालनीयं, येन प्रागुक्तमस्मद्दत्तवरसप्तकं सफलं स्यात्। तद्यथा—

१ सिंधुदेशं गतैर्गच्छनायकैः पंचनदी साधनं कार्यम्।
२ तथा सूरिभिः प्रतिदिनं द्विशत् (२००) वारं सूरिमंत्रजापः कार्यः।
४ खरतर श्राद्धैरुभयकालं गृहे वा उपाश्रये वा सप्त स्मरणानि गुणनीयानि।
५ साधुभिर्नित्यं द्विसहस्र नमस्कार गुणनीयाः। तत्रैकस्मिन्माणिके एको नमस्कार एकं च उपसर्गहरस्तोत्रं एवं यद्गुणनं तत् खिच्चडिका इत्युच्यते।
६ तथा खरतर श्राद्धैर्मासमध्ये आचाम्लद्वयं कार्यम्।
७ खरतर साधुभिः सति सामर्थ्ये सदा एकाशनकं कार्यम्।

इति। पुनस्ताभिरुक्तं—१ दिल्ली, २ अजमेरु, ३ भरुअच्छ, ४ उज्जैन, ५ मुलतान, ६ उच्चनगर, ७ लाहोर—एतन्नगरसप्तके परिपूर्णशक्तिरहितैः खरतर गच्छनायकै रात्रौ न स्थातव्यमित्युक्त्वा स्वस्थानं जग्मुः। तथा पुनरजमेरुनगरे पाक्षिक प्रतिक्रमणं कुर्वद्भिः श्री गुरुभिः पुनः पुनर्झनत्कारं कुर्वाणा विद्युद् मंत्रबलेन जलपात्रस्याधोभागे रक्षिता, ततः प्रतिक्रमणानंतरं पात्राधोभागात् निष्कास्य 'जिनदत्तनाम्नि गृहिते सति नाहं पतिष्यामीति' तद्वरं गृहीत्वा मुक्ता स्वस्थानं गता। तथा पुनरेकदा गुरवो विहारं कुर्वाणा वृद्धनगरं प्राप्ताः, तत्र जिनमतोन्नतिमसहमाना ब्राह्मणा जिनचैत्ये म्रियमाणां गां प्रक्षिपंतिस्म। ततो मृता गौः। तां च विलोक्य, ब्राह्मणाः प्रोचुः—अहो जैनानां देवो गौघातक इति। ततो विलक्षीभूतैः श्रावकैर्गुरवो विज्ञप्ताः, तदा गुरुभिर्मंत्रबलेन व्यंतरप्रयोगेण मृता गौः सज्जीकृता; ततः सा गौः स्वयमेव जिनगृहादुत्थाय शिवदेवगृहे शिवमूर्त्तेरुपरि आगत्य निपातिता। ततो नगरे ब्राह्मणानामती-

वोपहासो जातः। तदा लज्जिता ब्राह्मणा गुरूणां चरणयोर्निपतिताः, इत्थं कथयामासुश्च—भो स्वामिनो यूयं महन्तः। इतः परमस्मिन् नगरे ये केपि भवत्परंपरायां सूरयः समेष्यन्ति तेषां प्रवेशोत्सवं वयं करिष्यामहे इति। तदानीं भूयसी जिनमतप्रभावना जाता। तथा पुनरन्यदा उच्चनगरे गुरवः समागतास्तत्र प्रवेशोत्सवे जायमाने जनानामतिबाहुल्यात् तद्ग्रामाधीशस्य मुगलस्य पुत्रो वाहनान्निपत्य मृतः, तदा श्राद्धाः सर्वेपि विमनस्का जाताः, अथ तेषां मुखात् श्री गुरुभिरेतत् स्वरूपं विज्ञाय जिनमतप्रभावनार्थं मद्यमांसभक्षणमस्मै न कारयितव्यमित्युक्त्वा व्यंतरप्रयोगेण षण्मासान् यावत् स मृतो मुगलपुत्रः सजीवः कृतः। तथा पुनर्नागदेवनामा श्राद्धः अंबड इत्यपर नामा एकदा गिरनार पर्वते उपवास त्रयं कृत्वा अंबिकां समाराध्य च 'हे! मातरस्मिन् समये भरतक्षेत्रे युगप्रधानपदधारकः कः सूरिरस्ति, यमहमात्मनो गुरुत्वेन स्थापयामीति' पृष्टवान्। तदा अंबिकादेव्या तस्य हस्ते सुवर्णाक्षरैः—दासानुदासा इव सर्वदेवाः, यदीय पादाब्जतले लुठंति। मरुस्थले कल्पतरुः स जीयात्, युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः ॥ १ ॥ इत्येतत्काव्यं लिखित्वा प्रोक्तं ' य एतानि तव हस्ताक्षराणि प्रकटयिष्यति स सूरिर्युगप्रधानो ज्ञेयः। ततः स श्राद्धः स्थाने २ बहुभ्यः सूरिभ्यो हस्तमदर्शयत् परं कोपि अक्षराणि वाचयितुं न समर्थो बभूव। अथैकदा स पाटणनगरे त्रांबावाडाभिधपाटके श्री जिनदत्तसूरीणां पार्श्वे समागत्य हस्तं दर्शितवान्, गुरुभिस्तद्हस्तलिखितस्वर्णाक्षराणामुपरि वासचूर्णप्रक्षेपं कृत्वा शिष्याय आज्ञा दत्ता। ततो वाचितानि शिष्येण तान्यक्षराणि। तदा स नागदेवः परमभक्तिमान् श्रावको बभूव। एवं विधाः कलिकाले युगप्रधान—पदधारकाः श्री गुरवो जाताः। तथा पुनरेकदा व्याख्यानं कुर्वद्भिः श्री गुरुभिर्दीर्घोपयोगेन समुद्रमध्ये निमज्जंतं श्रावकस्य पोतं विज्ञाय स्वस्मरणं कुर्वतां जनानामुपकारार्थं व्याख्यानपृष्टकं मध्ये मुक्त्वा पक्षिरूपेण समुद्रे गत्वा पोतस्तारितः। एवं श्राद्धस्य कष्टं दूरी कृत्य पश्चादागत्य व्याख्यानं कर्तुं समुपविष्टा ज्ञातश्चैष वृत्तांतः सर्वैरपि लोकैः, ततः श्री गुरूणां महामहिमा प्रससार। तथा पुनरन्यदा श्री गुरवः प्रबलप्रवेशोत्सवेन मुलताननगरे समागताः, तदा चतुःपथे स्थितेन पत्तनवास्तव्य परपक्षीय—अंबडनाम्ना श्रावकेण खरतर गच्छोन्नतिमसहमानेन प्रोक्तं—'अस्मिन्नगरे इत्थमाडंबरेण भवद्भिरागम्यते परं अणहिल्लपत्तने यद्येवं भवदागमनं स्यात्तदा ज्ञायते' इति। अथैतत् श्रुत्वा गुरुभिरुक्तं 'भो! वयमनेनैव प्रकारेण तत्रायास्यामः, परं त्वं तैललवणादिकं स्कंधे वहन् सन्मुखं मिलिष्यसीति'। अथ गुरवः कियद्भिर्वासरैरणहिल्लपत्तने समाजग्मुः। तदानीं स अंबडश्राद्धो दैववसान्निर्धनो जातः। ततो ग्राहकभयात् मुलतान नगरात् पलाय्य पत्तने समागत्य तैललवणादि व्यापारेणाजीविकां कुर्वन् प्रवेशोत्सवे जायमाने गुरूणां सन्मुखं मिलितः, गुरुभिरुपलक्ष्य शब्दितस्ततो गुरूपरि अति द्वेषं वहन् कपटेन खरतर श्राद्धो बभूव। एकदा श्री गुरुभ्यो विषमिश्रितं शर्कराजलं पायितवान्। ततो गुरुभिर्विषप्रयोगं ज्ञात्वा तत्रत्य रायभणशालिक गोत्रीय आभूनामकं मुख्यश्राद्धं प्रति तत्स्वरूपं निवेद्य घटिकायोजनगामिना क्रमेलकेन पाल्हणपुरात् विषापहारिणीमुद्रामानाय्य निर्विषैर्जाताः। अथ स

अंबडो लोकैः निंद्यमानस्ततो मृत्वा व्यंतरो भूत्वा छलनार्थं गुरुछिद्राणि पश्यतिस्म। एकदा पट्टात् रजोहरणप्रपतनेन छलिता गुरवस्तेन। ततः श्री गुरून् व्यग्रान् विलोक्य आभूनामक श्रावकेण तद्व्यंतरवचसा स्वकुटुंबं गुरूणामुपरि ढोकयित्वा सज्जीकृता गुरवस्ततो गुरुभिस्तदंबड-च्छलं ज्ञात्वा रजोहरणं गृहीत्वा तत्प्रयोगेण जीवितं सर्वमपि तत् कुटुंबम्। ततो नष्टो व्यंतरः स्वस्थानं ययौ। तथा पुनरेकदा विक्रमपुरे मरकोपद्रवः प्रादुर्भूतः, ततो गुरुभिर्जैनेभ्यः स उपद्रवो वारितः, तदा दुःखितैर्माहेश्वरैरुक्तं–'स्वामिन्! अस्मदुपर्यपि एषा कृपा विधेया' ततो गुरुभिर्वचनं गृहीत्वा तेषामपि मरकोपद्रवो निरस्तस्तदा बहवो माहेश्वराः श्रावकाः कृताः; तथा केपि शैवाः श्राद्धा न जाताः। तन्मध्ये यस्य चत्वारः पुत्रास्तस्य एकः पुत्रो गृहीतो, यस्य चतस्रः पुत्र्यस्तस्यैका पुत्री गृहीता, एवं च पंचशत (५००) शिष्याः, सप्तशत (७००) साध्व्यश्च दीक्षिताः। इत्थं श्रीजिनदत्तसूरिभिर्बहुषु नगरेषु नाहटा, राखेचा, भणशाली, नवलखा, डागा, लूणीया इत्यादि गोत्रालंकृताः साधिकैक (१) लक्ष श्राद्धाः प्रतिबोधिताः। तथा श्रीगुरुभिर्मुलताननगरे लूणीया गोत्रीय हाथी साहस्योपरि कृपां विधाय प्रतिक्रमणे तस्मै "अजियंजियसव्वभयं" इति स्तोत्रं दत्तम्। तथा अणहिल्लपत्तने बोहित्थरा गोत्रीय श्रावकेभ्यो "जयतिहुयण वर कप्प रुक्ख" इति स्तोत्रं दत्तम्। तथा गुरुभिर्मंडताख्ये नगरे गणधर चोपडा गोत्रीय श्राद्धेभ्य "उवसग्गहरं पासं" इति स्तवनं प्रदत्तम्। अथैवंविधाः क्षत्रीय-ब्राह्मणादि–कुलीन–साधिकलक्षश्राद्धप्रतिबोधकाः, जलभ्रमोपरि कंबलास्तरणादि प्रकारेण पंचनदीसाधकाः, संदेहदोलावल्याद्यनेकग्रन्थविधायकाः परकायप्रवेशिन्यादि–विविधविद्या-संपन्नाः, परोपकारकारिणः, परमयशःसौभाग्यधारिणः, श्री खरतर गच्छनायकाः महा-प्रभावकाः श्रीजिनदत्तसूरयः सं० १२११ आषाढ शुदि एकादस्यामजमेरु नगरे अनशनं कृत्वा प्रथमं स्वर्गं गताः॥ ४४॥

॥ श्री जिनदत्तसूरीणां गुरूणां गुणवर्णनम्। मया क्षमादिकल्याणमुनिना लेशतः कृतम्॥
सविस्तरेण तत्कर्तुं सूराचार्योपि न क्षमः।

४५. तत्पट्टे पंचचत्वारिंशत्तमः श्री जिनचंद्रसूरिः। स च सं० ११९७ भाद्रपद शुक्ल अष्टम्यां लब्धजन्मा, पिता साह रासलकः माता देल्हणदेवी तयोः पुत्रः। सं० १२०३ फाल्गुण कृष्ण नवम्यां अजमेरुपुरे संप्राप्तदीक्षः। सं० १२११ वैशाख सुदि षष्ठ्यां विक्रम-पुरे रासलकृतनंदिमहोत्सवेन श्रीजिनदत्तसूरिभिः स्वयमाचार्यपदे स्थापितः। नरमणि मंडितभालः, खंज–क्षेत्रपालसंसेवितश्च संजातः। अथान्यदा श्री गुरवो गुर्ज्जरदेशं प्रति गच्छंतः श्रीपाल मदनपाल श्रीचंदादि संघाग्रहेण दिल्लीनगरे समागताः, तत्रैकदा गुरुभिरं-त्यावस्थायां मदनपालश्राद्धाय उक्तं–'अस्माकं मस्तके मणिरस्ति, सा चाग्निसंस्कारसमये दुग्धभृतपात्ररक्षणेन भवता गृहीतव्या, तथा मार्गमध्ये विश्रामग्रहणार्थं सेढिका न विमोच्या, इति। ततः सर्वायुः षड् विंशति वर्षाणि प्रपाल्य सं० १२२३ भाद्र कृष्ण चतुर्दश्या-मनसनेन स्वर्गं गताः। तदा सर्वे श्रावकाः संमील्य अग्निसंस्कारणार्थं चलिता यावता च

माणिक्यचतुष्के समागताः, तावता तैः कार्याकुलत्वेन प्रागुक्तगुरुवचनविस्मरणात् विश्रामार्थं सेढिकाऽधो विमुक्ता, मणिग्रहणाय दुग्धपात्रमपि न रक्षितं, परं तत्रैको विद्यावान् योगी मणिजिघृक्षया दुग्धपात्रं भृत्वा एकांते स्थितः। अथ सा सेढिका बहुप्रयत्नेन उत्पाद्यमानापि नोत्तिष्ठातिस्म। ततः सर्वस्मिन्नपि नगरे एषा वार्त्ता प्रवृत्ता, क्रमेण पतिसाहिनापि श्रुता। ततः स्वयं तत्र आगत्य बहव उत्पाटनोपाया अपि कृताः, परं सेढिका पदमात्रमपि ततो न चलिता, ततः पतिसाहिना प्रोक्तं–'सत्यो यं देवः, एतस्य स्थानमत्रैव भवतु' ततः श्रावकैस्तत्रैवाग्निसंस्कारः कृतः। तस्मिन्नवसरे मणिर्गुरुमस्तकात् फडाकशब्दं कृत्वा योगिरक्षितदुग्धपात्रे आगत्य निपतिता, योगी च तां गृहीत्वा स्वस्थानं ययौ। तदा मदनपालेनोक्तं गुरुभिर्मह्यं प्रागुक्तमासीत्, परमहं त्वरावसात् विस्मृतः। ततः सर्वैः साधुश्रावकैः तस्मै उपालंभो दत्तः। अथ तत्रैव जिनचंद्रसूरीणां स्तूपस्थापना कृता, पतिसाहिप्रमुखैः सर्वैरपि लोकैर्बहुमानो विहितः, तत् स्थानमद्यापि पूज्यमानं प्रवर्त्तते। एवं विधाः सप्रभावाः श्री गुरवो जाताः। इतश्चतुर्थपट्टे सातिशयजिनचंद्रेति नाम स्थाप्यमिति पद्मावती वचनात् व्यवस्था जाता ॥ ४५ ॥

४६. तत्पट्टे षट्चत्वारिंशत्तमः श्री जिनपतिसूरिः। तस्य च सं० १२१० चैत्र वदि अष्टम्यां मूलनक्षत्रे जन्म। तथा माल्हूगोत्रीय साह यशोवर्द्धनः पिता, सूहवदेवी माता। सं० १२१८ फाल्गुण वदि अष्टम्यां दिल्लीनगरे दीक्षा। सं० १२२३ कार्तिक सुदि त्रयोदश्यां श्रीजयदेवाचार्येण पदस्थापना कृता। अथ श्रीजिनपतिसूरय एकदा बब्बेरनाम्नि पत्तने समाजग्मुः; तत्र षट्त्रिंशद्वादेषु जयो लब्धः। बही जिनशासन–प्रभावना कृता। तथा पुनरेकदा आसापुरे श्रीमालज्ञातीय हाजीसाह कारित प्रतिष्ठावसरे मणिग्राहिणा योगिना जिनप्रतिमा स्तंभिता। तदा सचिन्तैर्गुरुभिः स्वगुरवः समाराधिताः। ततः श्रीजिनचंद्रसूरिभिः प्रादुर्भूय चूर्णं दत्तम्। अथ प्रभाते गुरुभिः प्रतिमोपरि तच्चूर्णं प्रक्षिप्तं तेन सद्य उत्थिता प्रतिमा, ततो रंजितेन योगिना मणिः पश्चात् प्रदत्ता, श्री गुरूणां भूयान्माहिमा प्रससार। तथा पुनरेकदा श्री गुरवोऽजमेरु नगरे चतुर्मास्यां स्थिता आसीत्, तदा तत्रत्य रामदेवादि श्रावकाणां पुरः सदैव खेड वास्तव्य छाजेडगोत्रीय मंत्रि ऊधरण साहस्य प्रशंसामकुर्वन्। एकदा रामदेव श्राद्धो मंत्रि ऊधरणं प्रति मिलितः, तदा तेन मंत्रिणा रामदेवं बहादरेण स्वगृहं समानीय विधिना भोजनादिभिस्तद्भक्तिः कृता, तस्मिन्नवसरे मंत्रिपत्नी देवगृहे देववंदनार्थं चलिता शाटक–कंचुकाद्यनेक वस्त्रभृता छब्बडिका सार्थे गृहीतवती। तदा रामदेवेन पृष्टं–किमर्थमेताः, ततः सेवकैः उक्तं–साधर्मिक स्त्रीभ्यः प्रदानार्थं सदैव गृह्यते। तदा रामदेव उवाच श्री जिनपतिसूरयो यद् भवत्प्रशंसां कुर्वन्ति तद् योग्यमेव, यद् गृहे इत्थं धर्मकार्याणि जायंते इति।

अथैकदा ऊधरणमंत्रिणा नागपुरे देवगृहं कारितं तदा बिंबप्रतिष्ठानिमित्तं मंत्रिणा स्वकीयाः कुलगुरवः समाहूताः, परं केनापि कारणेन मुहूर्त्तोपरि नागताः। अपरं च ऊधरणस्य भार्या खरतर गच्छीय श्राद्धस्य पुत्री आसीत्, तया मंत्रिकुलगुरून् हीनाचारिणो मत्वा शुद्धसंवेगरंगधारिणः

श्रीजिनपतिसूरयः समाहूताः, ते च मुहूर्त्तोपरि तत्रागताः। तदा तेषां पार्श्वे प्रतिष्ठा कारिता। ऊवरणमंत्रि सकुटुंबः खरतर गच्छीय श्रावकश्च बभूव; तस्य च कुलधरनामा पुत्रो जातो येन वाहडमेरनगरे उत्तुंगतोरणप्रासादः कारितः। तथा पुनर्मरोटवास्तव्य नेमिचंद्र भांडागारिकेण परीक्षां कृत्वा शुद्धसंवेगवतः श्रीगुरून् ज्ञात्वा चारित्रेच्छां कुर्वाणो अंबडनामा स्वपुत्रो गुरुभ्यो दत्तः। एवंविधाः श्रीजिनपतिसूरयः सर्वायुः सप्तषष्टि वर्षाणि प्रपाल्य, सं० १२७७ पाल्हणपुरे स्वर्गं गताः।

तदा सं० १२१३ आंचलिक मतं जातं। तथा सं० १२८५ चित्रवाल गच्छीय जगचंद्रसूरितः तपागणो जातः॥

४७. श्री जिनपतिसूरिपट्टे सप्तचत्वारिंशत्तमः श्री जिनेश्वरसूरिः। तस्य च सं० १२४५ मार्गशीर्ष सुदि एकदश्यां भरणीनक्षत्रे जन्म। तथा मरोटवास्तव्यभांडागारिक नेमिचंद्रः पिता, लक्ष्मी माता, तयोः पुत्रो अंबड इति मूलनामा। सं० १२५५ खेडनगरे दीक्षां दत्त्वा गुरुभिर्वीरप्रभ इति नाम दत्तं। ततः सं० १२७८ माघसुदि षष्ठ्यां जालोर नगरे माल्हूगोत्रीय साह खीमसीकारित द्वादश सहस्र रूप्यमुद्राव्ययरूप नंदिमहोत्सवेन सर्वदेवाचार्यप्रदत्त सूरिमंत्रेण पदस्थापना जाता। अथैकदा अणहिलपत्तने कुमारपालेन राज्ञा हेमाचार्याय प्रोक्तं—'स्वामिन्! यदि मह्यं स्वर्णसिद्धेरुपायं दद्यास्तर्हि विक्रमादित्यवद् अहमपि नवीनं संवत्सरं प्रवर्त्तयामि'। तदा गुरुणोक्तं—'श्रीहरिभद्रसूरिशिष्यानीतबौद्धपुस्तके स्वर्णसिद्धेरुपायोऽस्ति, परं तत् पुस्तकं खरतर गच्छे विद्यते'। ततो राजा नानादेशनिवासिनो व्यापारार्थं पत्तने स्थितान् श्रावकान् निरुध्य कथयामास 'यदि पुस्तकं आनायत तदा मुच्यध्वे'। ततः श्रावकैर्जिनेश्वरसूरिभ्यस्तत्स्वरूपं कथापितं, तदा गुरुभिश्चित्रकूटे गत्वा चिंतामणिपार्श्वनाथ—चैत्यस्तंभात् पुस्तकं निष्कास्य पत्तने आनीय राज्ञे दत्तं, परंतु "इदं पुस्तकं न छोटनीयं न वाचनीयं, किंतु भाडांगारे पूजनीयमिति" पुस्तकोपरि लिखितानि वर्णानि विलोक्य राजा उवाच—'अहं तु नैतत् पुस्तकं छोटयामि'। हेमाचार्येणाप्युक्तं—'महापुरुषाणां वचनं न लोपनीयं'। तदा हेमाचार्यभगिनी हेमश्रीर्नाम महत्तरा उवाच—'अहं छोटयामि जिनदत्तसूरिवचनात् नाहं बिभेमि'। ततो राज्ञा तस्यै पुस्तकं दत्तं, तया छोटितं परं तत्कालमेव तस्या द्वे अपि चक्षुषी निःसृत्य पतिते; ततो अंधत्वं प्राप्तां तां दृष्ट्वा राज्ञा पुस्तकं स्वभंडागारे मुक्तं रात्रौ अग्नेर्लग्नात् तद्भांडागारं सर्वमपि ज्वलितं, तदा तत् पुस्तकं आकाशे उड्डीय स्वस्थानं प्राप्तम्। एवंविधाः श्री जिनेश्वरसूरयः सं० १३३१ आश्विन वदि षष्ट्यां अनशनेन स्वर्गं गताः॥ ४७॥

तद्वारके १३३१ जिनसिंहसूरितो लघु खरतर शाखा भिन्ना। अयं तृतीयो गच्छभेदः॥

४८. श्री जिनेश्वरसूरि पट्टेऽष्टचत्वारिंशत्तमः श्रीजिनप्रबोधसूरिः। स च दुर्गप्रबोधव्याख्याता। साह श्रीचंद—भार्या सिरियादेवी तयोः पुत्रः। सं० १२८५ लब्धजन्मा पर्वत इति मूलनामा। सं० १२९६ फाल्गुण वदि पंचम्यां हस्तार्के थिरापद्रनगरे गृहीतदीक्षः,

प्रबोधमूर्तिरिति दत्तनामा क्रमेण वाचकपदं प्राप्तः, ततः सं० १३३१ आश्विन वदि पंचम्यां संक्षेपेण कृतपट्टाभिषेकः। पश्चात् सं० १३३१ फाल्गुणवदि अष्टम्यां स्वातिनक्षत्रे जालोरवास्तव्य माल्हूगोत्रीय साह खीमसीकेन पंचविंशति सहस्र (२५०००) रूप्यक व्ययेन सविस्तरं विहितपदमहोत्सवः। एवंविधः श्री जिनप्रबोधसूरिर्निर्मलचारित्रमाराध्य सं० १३४१ स्वर्गं गतः ॥ ४८ ॥

४९. तत्पट्टे एकोनपंचाशत्तमः श्रीजिनचंद्रसूरिः। तस्य च समियाणाभिधग्रामवास्तव्य छाजहडगोत्रीय मंत्रिदेवराजः पिता, कमलादेवी माता, खंभराय इति मूल नाम। सं० १३२६ मार्गशीर्ष सुदि चतुर्थ्यां जन्म। सं० १३३२ जालोरनगरे दीक्षा। सं० १३४१ वैशाखसुदि तृतीयायां सोमवारे जालोरवास्तव्य माल्हूगोत्रीय साहखीमसीकेन द्वादशसहस्र (१२०००)रूप्यकव्ययेन पदमहोत्सवः कृतः। एवंविधाश्चतुर्नृपप्रतिबोधकाः, कलिकाल-केवलीति विरुदविख्याताः, जितानेकवादिनः, जिनशासनोन्नतिकारिणः, श्रीजिनचंद्रसूरयः सं० १३७६ कुसुमाणाख्ये ग्रामे स्वर्गं गताः ॥ ४९ ॥

तद्वारके खरतर गच्छस्य राजगच्छ इति प्रसिद्धिर्जाता।

५०. तत्पट्टे पंचाशत्तमः श्रीजिनकुशलसूरिः। तस्य च समियाणाभिधग्रामवास्तव्य छाजहड गोत्रीय मंत्रि जील्हागरः पिता, जयंतश्रीः माता, सं० १३३० जन्म। सं० १३४७ दीक्षा। सं० १३७७ जेष्ट वदि एकादश्यां राजेंद्राचार्येण सूरिमंत्रो दत्तः। तदा पाटणवास्तव्य साह तेजपालेन नंदिमहोत्सवः कृतः। चतुर्विंशतिशत (२४००) साधु-साध्वीभ्यः, तथा सप्तशत (७००) वेषधारि दर्शनि प्रमुखेभ्यो वस्त्राणि दत्तानि; तथा तस्मिन्नवसरे दिल्लीवास्तव्य महतीयाणगोत्रीय विजयसिंह श्राद्धः तत्रागतस्तेनापि बहुधनव्ययेन नंदिमहोत्सवः कृतः। तथा सं० १३८० साह तेजपाल कृत संघेन सार्धं शत्रुंजयतीर्थे समागतैः गुरुभिर्मानतुंग नाम्नि खरतर वसतिप्रासादे सप्तविंशत्यंगुलप्रमाण श्रीआदिनाथबिंब-प्रतिष्ठा कृता। तथा भीमपल्लीनगरे भुवनपालकारित द्वासप्तति (७२) देवकुलिकामंडित श्रीवीरचैत्यं प्रतिष्ठितम्। तथा जेसलमेरुनगरे जसधवलकारितचिंतामणिपार्श्वनाथप्रतिष्ठा कृता। तथा पुनः जालोरनगरे श्रीपार्श्वनाथप्रतिष्ठा विहिता। तथा आगराभिधनगरनिवासी-श्रीसंघस्य आग्रहेण तत्सार्थे भूत्वा शत्रुंजय यात्रां कृत्वा भाद्रपदवदि सप्तम्यां पाटणनगरे आजग्मे। तथा श्रीगुरूणां द्वादशशत (१२००) साधु संप्रदायो जातः, पंचाधिकैकशत (१०५) साध्वी संप्रदायोऽभूत्। तथा श्रीगुरुभिर्विनयप्रभादि-शिष्येभ्य उपाध्यायपदं दत्तं, येन विनयप्रभोपाध्यायेन निर्धनीभूतस्य निज भ्रातुः संपत्तिसिद्ध्यर्थं मंत्रगर्भितगौतमरासो विहितस्तद्गुणनेन स्वभ्राता पुनर्धनवान् जातः। एवंविधा बहु श्रावकप्रतिबोधकाः, परम जिनधर्मप्रभावकाः, श्रीजिनकुशलसूरयः, सं० १३८९ फाल्गुणवदि अमावस्यां देराउर नगरे अष्टौ दिनानि यावत् अनशनं कृत्वा स्वर्गं प्राप्ताः। ते च अधुनापि "दादोजी" इति नाम्ना सर्वत्र जगति प्रसिद्धाः संति, प्रति नगरं गुरूणां चरणन्यासौ पूज्येते, सोमवत्यां पौर्णमास्यां प्रथमं दर्शनं दत्तं, तेन तद्दिने विशेषेण पूजा प्रवर्तते इति ॥ ५० ॥

५१. तत्पट्टे एकपंचाशत्तमः श्रीजिनपद्मसूरिः । तस्य च छाजहडवंशविभूषणस्य सं० १३८९ जेष्ट सुदि षष्ट्यां श्री देराउरपुरे साह हरपालेन नंदिमहोत्सवः कृतः । तदा अष्टमे वर्षे तरुणप्रभाचार्येण सूरिमंत्रो दत्तः । अथैकदा श्रीगुरुर्बाहडमेरुनगरे श्री वीर-प्रासादे देववंदनार्थं आजग्मे, तदा देवगृहस्य लघु द्वारं महती च प्रतिमां विलोक्य, पंजाब-देशोत्पन्नत्वात्तद्देशभाषया प्रोक्तं—'बूहा नंढा वसही वड्डी अंदर क्युं माणीति' अथे-दृग् वचनैः प्रकटितबालभावं, श्रीगुरुं प्रति पार्श्वस्थितेन विवेकसमुद्रोपाध्यायेन मौनं कुरु, इति प्रोक्तं; ततो व्याख्यानादि स्थितिं प्रवर्त्तयता तेनोपाध्यायेन सार्द्धं श्री गुरवो गुर्जरदेशे आगताः, तत्र पाटणपार्श्वे सरस्वतीनदीतटे रात्रौ स्थिताः, परं तदानीं गुरुचेतसि इयं चिंता समुत्पन्ना —'प्रभाते संघाग्रेऽन्यया भाषया कथं व्याख्यानं करिष्ये' अथैवं चिंतयतां गुरूणां भाग्येन अर्ध-रात्रसमये सरस्वतीनद्या अधिष्ठायिका सरस्वती देवी प्रादुर्भूय इत्थं वरं दत्तवती—'भो स्वामिन् ! प्रभाते त्वं संघाग्रे यत् किमपि वक्ष्यसि तद्वचः सकलजनमनोहारि भविष्यति'। ततः प्रभाते समस्तसंघाग्रे श्री गुरुभिः स्वयमेव "अर्हंतो भगवंत इंद्रमहिता" इत्यादि नवीनोत्पादितकाव्येन उपदेशो दत्तः; तदा समस्तोपि संघो श्री गुरुवाग्विलासश्रवणेन रंजितमना संजातः । तत्र गुरुभिः "बालधवलकूर्चाल सरस्वती" विरुदं प्राप्तम् । एवंविधाः श्री जिनपद्मसूरयः सं० १४०० वैशाख सुदि चतुर्दश्यां पाटण नगरे स्वर्ग गताः ॥ ५१ ॥

५२. तत्पट्टे द्विपंचाशत्तमः श्रीजिनलब्धिसूरिः । तस्य च पाटणवास्तव्य नवलखा-गोत्रीय साह ईश्वरकृतनंदिमहोत्सवेन पदस्थापना जाता । तरुणप्रभाचार्येण सूरिमंत्रो दत्तः । ततः क्रमेण श्री गुरुः सर्वसैद्धांतिकशिरोमणिरष्टविधानपूरकश्च संजातः । स च सं० १४०६ नागपुरे स्वर्ग भाक् ॥ ५२ ॥

५३. तत्पट्टे त्रिपंचाशत्तमः श्री जिनचंद्रसूरिः । तस्य च सं० १४०६ माघ सुदि दशम्यां नागपुरवास्तव्य श्रीमाल साह हाथीकृत नंदिमहोत्सवेन पदस्थापना जाता । तरुणप्रभाचा-र्येण सूरिमंत्रो दत्तः । श्री गुरुः सं० १४१५ आषाढ वदि त्रयोदश्यां स्तंभतीर्थे स्वर्गभाक् ॥५३॥

५४. तत्पट्टे चतुःपंचाशत्तमः जिनोदयसूरिः । तस्य च पाल्हणपुरवास्तव्य माल्हू-गोत्रीय साह रुंदपाल पिता, धारलदेवी माता, सं० १३७५ जन्म, समरो इति मूलनाम । सं० १४१५ आषाढसुदि द्वितीयायां स्तंभतीर्थे लूणीयागोत्रीय साह जेसलकृत नंदिमहो-त्सवेन श्रीतरुणप्रभाचार्येण पदस्थापना कृता । ततः श्रीगुरुभिः तत्र श्रीस्तंभतीर्थे अजितजिनचैत्यप्रतिष्ठितं, तथा श्रीशत्रुंजययात्रां कृत्वा तत्र पंच प्रतिष्ठाः कृताः । एवं विधाः पंचपर्वदिनोपवासकारकाः, द्वादश ग्रामेषु अमारिघोषणा प्रवर्त्तकाः, अष्टाविंशति (२८) साधुपरिवारेणानेकदेशविहारकारिणः, श्रीजिनोदयसूरयः सं० १४३२ भाद्रपद वदि एकादश्यां पाटणनगरे स्वर्ग गताः। तद्वारके सं० १४२२ वेगड खरतर शाखा भिन्ना; तदेवं—प्रथमं धर्मवल्लभवाचकाय आचार्यपदप्रदानविचारः कृत आसीत्, पश्चात् तं सदोषं ज्ञात्वा द्वितीयशिष्याय आचार्यपदं दत्तं । तदा रुष्टेन धर्मवल्लभगणिना जेसलमेरुवास्तव्य वेगड

छाजहडगोत्रीय स्वसंसारिणामग्रे सर्वोपि स्ववृत्तांतः प्रोक्तः। ततः तेषां मध्ये कैश्चित् तद् भ्रातादिभिरुक्तं 'अस्माकं त्वमेवाचार्यः, वयमन्यं न मन्यामहे' इति। तदा तत्रायं चतुर्थो गच्छभेदो जातः। परं तत्संसारिण एव द्वादश श्रावका जाताः, नान्ये; तथा गुरुशापात् तद्गच्छे प्राय एकोनविंशति (१९) यतिभ्योऽधिका यतयो न भवंति, यदि स्यात् तदा म्रियते-भ्रष्टो वा स्यात् इति ॥ ५४ ॥

५५. श्रीजिनोदयसूरिपट्टे पंच पंचाशत्तमः श्रीजिनराजसूरिः। तस्य च सं० १४३२ फाल्गुनवदि षष्ठ्यां पाटणनगरे साह धरणकृतनंदिमहोत्सवेन सूरिपदं जातं। ततो मुखाधीतसपादलक्षप्रमाण न्यायग्रन्थाः, श्री स्वर्णप्रभाचार्य, भुवनरत्नाचार्य, सागरचंद्राचार्य स्थापकाः, श्री गुरवः सं० १४६१ देवलवाडाख्ये नगरे स्वर्गं गताः ॥ ५५ ॥

५६. तत्पट्टे षट्पंचाशत्तमः श्री जिनभद्रसूरिः। तत् प्रबंधो यथा—सागरचंद्राचार्येण श्री जिनराजसूरिपट्टे श्री जिनवर्द्धनसूरिः स्थापित आसीत्। स चैकदा जेसलमेरुदुर्गे श्री चिंतामणिपार्श्वदेवगृहे मूलनायकपार्श्वस्थितां क्षेत्रपालमूर्तिं विलोक्य, स्वामिसेवकयो-स्तुल्यस्थाने अवस्थानमयुक्तमिति विचिंत्य च क्षेत्रपालमूर्तिं उत्पाट्य द्वारे स्थापितवान्, ततः कुपितः क्षेत्रपालो यत्र तत्र गुरूणां चतुर्थव्रतभंगं दर्शयामास। अनया रीत्या एकदा चित्रकूटे समागताः, तत्रापि देवेन तथैव कृतं, ततः सर्वेपि श्रावकाः चतुर्थव्रतभंगं ज्ञात्वाऽयं पूज्य-पदयोग्यो नास्ति, इति कथयामासुः, अथ जिनवर्द्धनसूरयो व्यंतरप्रयोगेण श्रथिलीभूताः संतः पिप्पलकग्रामे गत्वा स्थिताः, कियंतः शिष्याः पार्श्वे स्थितवंतः। अथ पश्चात् सागर-चंद्राचार्यप्रमुखसमस्तसाधुवर्गेण एकत्रीभूय 'गच्छस्थितिरक्षणार्थं नवीन आचार्यः स्थाप्य' इति विचारं कृत्वा एकं नवीनं क्षेत्रपालमाराध्य तं च सर्वेषु देशेषु संप्रेष्य-'यद्यूयं करिष्यध्वे तदस्माकं प्रमाणमिति' समस्त खरतरगच्छ–संघस्य हस्ताक्षराणि आनाय्य सर्वसाधुमंडलीं संमील्य भाणसोलग्रामे आजग्मे। तत्र श्रीजिनराजसूरिभि-रेकः स्वशिष्यो वाचकशीलचंद्रगणिपार्श्वेऽध्यापनाय रक्षितोऽभूत्। स च अधीतसकल-सिद्धान्तार्थः, भणसालिक गोत्रीयः, भादौ इति मूल नामा। सं० १४६१ गृहीतदीक्षः। क्रमेण पंचविंशति वर्षीयो जातः। तं च योग्यं ज्ञात्वा श्री सागरचंद्राचार्यः सप्त भकाराक्षराणि संमील्य सं० १४७५ माघ सुदी पौर्णमास्यां भणसालिक नाल्हा साहकारित सपादलक्ष-रूपकव्ययरूपनंदिमहोत्सवेन सूरिः स्थापितवान्। सप्त भकारास्तु अमी–१ भाणसोल नगरं, २ भणशालिक गोत्रं, ३ भादौ नाम, ४ भरणी नक्षत्रं, ५ भद्रा करणं, ६ भट्टारकपदं, ७ जिनभद्रसूरीति स्थापित नाम, इति। अथैवंविधा अर्बुदाचल, गिरिनार, जेसलमेरु प्रमुख-स्थानेषु बिंबप्रासादप्रतिष्ठाकारकाः, श्री भावप्रभाचार्य, कीर्तिरत्नाचार्य,–स्थापकाः। स्थाने २ पुस्तक भांडागारस्थापकाः, श्री जिनभद्रसूरयः, सं० १५१४ मार्गशीर्ष वदि नवम्यां कुंभल मेरुनगरे स्वर्गं प्राप्ताः। तद्वारके सं० १४७४ श्री जिनवर्द्धनसूरितः पिप्पलक खरतर शाखा भिन्ना। अयं पंचमो गच्छभेदः ॥ ५६ ॥

५७. तत्पट्टे सप्तपंचाशत्तमः श्री जिनचंद्रसूरिः। तस्य च जेसलमेरुवास्तव्य चम्मगोत्रीय साह वच्छराजः पिता, बाल्हादेवी माता। सं० १४८७ जन्म, सं० १४९२ दीक्षा, सं० १५१४ वै० व० २ कुंभलमेरु वास्तव्य कूकडचोपडागोत्रीय साह समरसिंह-कृतनंदिमहोत्सवेन श्री कीर्तिरत्नाचार्येण पदस्थापना कृता। ततो अर्बुदाचलोपरि नवफणपार्श्व-नाथप्रतिष्ठाविधायकाः, श्रीधर्मरत्न, गुणरत्नसूरि,–प्रमुखानेकपदस्थापकाः श्री जिनचंद्रसूरयः सं० १५३० जेसलमेरुनगरे स्वर्गं प्राप्ताः ॥५७॥

—तद्वारके सं० १५०८ अहमदावादे लौंकाख्येन लेखकेन प्रतिमा उत्थापिता, ततः सं० १५२४ वर्षे लौंकाभिधं मतं जातं ॥

५८. तत्पट्टे अष्टपंचाशत्तमः श्री जिनसमुद्रसूरिः। तस्य च वाहडमेरुवासी पारख गोत्रीय देकासाह पिता, माता देवलदेवी। सं० १५०६ जन्म, सं० १५२१ दीक्षा, सं० १५३० मा० सु० १३ जेसलमेरुवास्तव्य संघपति सोनपालकृतनंदिमहोत्सवेन श्री जिनचंद्रसूरिभिः स्वहस्तेन पदस्थापना कृता। ततः पंचनदी सोमयक्षादिसाधकाः, परमचारित्रवंतः, श्री जिनसमुद्रसूरयः सं० १५५५ अहमदावाद नगरे स्वर्गं गताः ॥ ५८ ॥

५९. तत्पट्टे एकोनषष्टितमः श्री जिनहंससूरिः। तस्य च सेत्रावाभिध नगरवास्तव्य चोपडागोत्रीय साह मेघराजः पिता, कमलादेवी माता। सं० १५२४ जन्म, सं० १५३५ दीक्षा, सं० १५५५ अहमदावादे पदस्थापना जाता। तथा सं० १५५६ वैशाखसुदि तृतीयायां रोहिणी-नक्षत्रे श्रीवीकानेरनगरे करमसीमंत्रिणा पीरोजी—लक्षव्ययेन पुनः पदस्थापना-महोत्सवो विहितः। अथैकदा आगराभिधनगरवास्तव्य सं० डुंगरसी, मेघराज, पोमदत्त प्रमुख संघेन अत्याग्रहेण आहूताः श्री जिनहंससूरयः तत्र गताः। तदा पतिसाहिप्रहितहस्त्यश्व-सिबिकावादित्रछत्रचामराद्याडंबरेण गुरूणां प्रवेशोत्सवो विहितः। तत्र गुरुभक्तिसंघ-भक्ति-आदौ द्विलक्षद्रव्यं व्ययीकृतं, तदसहमान-पिशुनकृतविकारेण पतिसाहिना गुरव आहूताः, धवलपुरे रक्षिताः। ततो देवकृतसांनिध्यात् श्री गुरवः पतिसाहिचित्तं रंजयित्वा, पंचशत (५००) बंदिजनान् मोचयित्वा, अमारघोषणां कारयित्वा, उपाश्रये आगताः। हर्षितः समस्तोपि संघः। ततोऽतिसौभाग्यधारकाः, त्रिपु नगरे प्रतिष्ठात्रयकारकाः, अनेकसंघपति-प्रमुखपदस्थापकाः, श्री गुरवः पाटणनगरे त्रीणि दिनानि अनशनं कृत्वा सं० १५८२ स्वर्गं प्राप्ताः ॥ ५९ ॥

—तद्वारके सं० १५६४ मल्लदेशे उपाध्याय (प्रत्यन्तरे आचार्य) शान्तिसागरतः आचार्य खरतर शाखा भिन्ना अयं षष्ठो गच्छभेदः ॥

६०. तत्पट्टे षष्टितमः श्रीजिनमाणिक्यसूरिः। तस्य च कूकडचोपडागोत्रीय साह जीवराजः पिता, पद्मादेवी माता। सं० १५४९ जन्म, सं० १५६० दीक्षा, सं० १५८२ वर्षे भाद्रपदवदि नवम्यां साह देवराजकृत नंदिमहोत्सवेन श्रीजिनहंससूरिभिः स्वहस्तेन पद-स्थापना कृता। ततो गुर्जर देश, पूर्व देश, सिंधु देशादि विहारकारकाः, पंचनदीसाधकाः,

सं० १५९३ मिते वीकानेरवास्तव्य वच्छासुत मंत्रि कर्मसिंहकारित नमिनाथ चैत्यबिंब-प्रतिष्ठाकारकाः श्री जिनमाणिक्यसूरयः कियंति वर्षाणि जेसलमेरुदुर्गेऽवसन्। तदा मुनयः सर्वेपि शिथिलाचारा जाताः, प्रतिमोत्थापकमतं च बहु विस्तृतं। ततो वीकानेरवास्तव्य वच्छावत मंत्रि संग्रामसिंहेन गच्छस्थितिरक्षणार्थं श्री गुरव आहूताः, तदा भावतो विहित-क्रियोद्धारैः श्रीगुरुभिः 'प्रथमं देराउरनगरे श्रीजिनकुशलसूरियात्रां कृत्वा पश्चात् परिग्रहं त्यक्त्वा इतो विहारं करिष्ये' इति विचिंत्य गुरुयात्रार्थं देराउरे जग्मे। तत्र गुरुदर्शनं कृत्वा, जेसलमेरुं प्रति पश्चादागच्छतां गुरूणां मार्गे जलाभावात्पिपासापरीषहः समुत्पन्नः। ततो रात्रौ जलं मिलितं तदा गुरुभिश्चिंतितं 'मया इयंति वर्षाणि रात्रौ चतुर्विधाहारप्रत्याख्यानं कृतं, तदद्य एकस्मिन् दिने कथं विनाश्यते' इति। ततः तत्रैव सं० १६१२ आषाढसुदि पंचम्या-मनशनेन कालं कृत्वा स्वर्गतिं प्राप्ताः॥ ६०॥

६१. तत्पट्टे एकषष्टितमः श्रीजिनचंद्रसूरिः। तस्य च तिमरीनगरपार्श्वस्थवडलीग्राम वास्तव्य रीहडगोत्रीय साह श्रीवंतः पिता, सिरीयादेवी माता। सं० १५९५ जन्म, सं० १६०४ दीक्षा, सं० १६१२ भाद्रपदसुदि नवम्यां जेसलमेरुनगरे राउत मालदेवकारित-नंदिमहोत्सवेन सूरिपदं जातं। तदा एव रात्रौ श्रीजिनमाणिक्यसूरिभिः प्रादुर्भूय समवसरणपुस्तकस्थमाम्नायसहितं सूरिमंत्रपत्रं जिनचंद्रसूरिभ्यो दर्शितं। ततः श्रीजिन-चंद्रसूरयः संवेगवासनया वासितचित्ताः संतः, गच्छे शिथिलत्वं दृष्ट्वा सर्वं परिग्रहं परित्यज्य मंत्रि-संग्रामसिंहपुत्रकर्मचंद्राग्रहेण बीकानेर नगरे समागताः, तत्र प्राचीनोपाश्रयं शिथिलाचारै-र्यतिभिर्निरुद्धं विलोक्य मंत्रिणा स्वकीयाऽश्वशाला गुरुभ्यो दत्ता, अपरापि बही गुरुभक्तिः कृता। गुरवस्तत्र विशेषतः क्रियोद्धारं विधाय सुविहितसाधुमार्गमादत्य, स्वसमानाचारैः साधुभिः सार्द्धं ततो विहारं कृत्वा स्थाने स्थाने प्रतिमोत्थापकमतोच्छेदं कुर्वंतः स्वसमाचारीं द्रढयंतः क्रमेण गुर्जरदेशे आगताः। तत्राऽहमदाबादनगरे चिर्भटीव्यापारेणाजीविकां कुर्वाणौ मिथ्यात्विकुलोत्पन्नौ प्राग्वाटज्ञातीयौ सिवा-सोमजी—नामानौ द्वौ भ्रातरौ प्रतिबोध्य सकुटुंबौ महाधनवंतौ श्रावकौ कृतवंतः। तथा पाटण नगरे एकदा केनापि परपक्षीयेण जनानां पुरो 'अभयदेवसूरिः खरतरगच्छे न जातः,' इत्युक्तं—तदा गुरुभिः शास्त्रसंमतं वादं कृत्वा चतुरशीतिगच्छीय मुनिसमक्षं परपक्षीयाः पराजयं नीताः। ततः सर्वैरपि नवांगीवृत्ति-विधायकोऽभयदेवसूरिखरतरगच्छे जातः इत्यंगीकृतं। पुनः तत्कृतकुमतिकुद्दालग्रन्थोऽ शुद्धभावं प्रापितः। तथा पुनः फलवर्द्धिकपार्श्वनाथदेवगृहद्वारे तपागच्छीयैर्दत्तानि तालकानि उद्घाटितानि, तथा पुनरेकदा मंत्रि कर्मचंद्रमुखाद् गुरूणामति महत्त्वं श्रुत्वा पतिशाहिना दर्शनार्थं समाहूता गुरवो लाहोरनगरे गत्वा अकब्बरं प्रतिबोध्य सकलदेशेषु फुरमाणकान् मोचयित्वाऽष्टाह्निकासु अमारिपालनं कारितवंतः, तथा वर्षं यावत् स्तंभनगरपार्श्वस्थसमुद्र-मत्स्यान् मोचितवंतः, तथा पुनर्येषामतिशयं दृष्ट्वा पतिसाहिना युगप्रधानपदं दत्तं। तस्मि-न्नवसरे एव श्रीमदकब्बराग्रहात् गुरुभिर्जिनसिंहसूरिः स्वहस्तेनाचार्यपदे स्थापितः। तदाऽति

प्रमुदितेन कर्मचंद्रमंत्रिणा महोत्सवो विहितः। तत्र नव ग्रामाः ९, नव हस्तिनः ९, पंचाशत् (५००) घोटकाः याचकेभ्यो दत्ता एवंकारसपादकोटि द्रव्यं दत्तं। पुनर्मंत्रिणाऽनेकदा श्री खरतरगच्छोद्दीपनं विहितं। तथा पुनः सं० १६५२ श्री गुरुभिः पंचनद्यः साधिताः, तत्र पीरपंचक, मानभद्र यक्ष, खंजक्षेत्रपालादयो देवाः साधिताः। तथा पुनरेकदा सं० १६६९ श्री सलेमपतिसाहिना गानादिकलानिपुणत्वेन स्वपार्श्वे रक्षितस्य तपागच्छीययतेर्निज-स्त्रिया सह एकांतस्नेहवार्त्ताकरणाद्यनाचारं विलोक्य कुपितेन सता स्वसेवकेभ्य इत्थमाज्ञा दत्ता–" मम सर्वदेशेषु ये केपि दर्शनिनः संति ते सर्वेपि स्त्रीधारकाः कर्तव्याः, नोचेत् देशेभ्यो बहिः कार्या " इति। ततो भीता यतयः केचित् समुद्रमुल्लंघ्य द्वीपांतरं गताः, केचित् भूमिगृहेषु प्रविष्टाः, केचित् केलिककाष्ठिकादीनां स्थानेषु स्थिताः। तस्मिन्नवसरे श्रीजिनचंद्रसूरिभिः पाटणतो विहृत्य उपद्रववारणार्थं आगराख्ये नगरे आजग्मे। तत्र गुरुदर्श-नादेव रंजितेन पतिसाहिना बहादरेण गुरव आहूताः, तदा गुरुभिर्बहुचमत्कारान् दर्शयित्वा प्राग्दत्ताज्ञा दूरीकारिता, सर्वत्र फुरमाणकान्मोचयित्वा सर्वे यतयः स्व स्व स्थानं प्रापिताश्च। इत्थं बहुधा जिनशासनोन्नतिः कृता, पुनर्गुरूणां–१ समयराज, २ महिमाराज, ३ धर्म-निधान, ४ रत्ननिधान, ५ ज्ञानविमल–एतत्पांडवपंचकप्रमुखाः, पंच नवति (९५) शिष्याः संजाताः। एवंविधाः श्रीजिनचंद्रसूरयः सर्वायुः पंचसप्तति (७५) वर्षाणि पालयित्वा, सं० १६७० आश्विन वदिद्वितीयायां बेनातटे स्वर्गं प्राप्ताः ॥ ६१ ॥

—तद्वारके सं० १६२१ भावहर्षोपाध्यायात् भावहर्षीय खरतरशाखाभिन्ना। अयं सप्तमो गच्छभेदः॥

६२. तत्पट्टे द्वाषष्टितमः श्रीजिनसिंहसूरिः। तस्य च गणधरचोपडागोत्रीय साह चांपसी पिता, चतुरंगदेवी माता। सं० १६१५ मार्गशीर्षसुदि पौर्णमास्यां खेतासरग्रामे जन्म, मानसिंहेति मूलनाम। सं० १६२३ मार्गशीर्षवदि पंचम्यां बीकानेरे दीक्षा। सं० १६४० माघसुदि पंचम्यां जेसलमेरौ वाचकपदं। सं० १६४९ फाल्गुनसुदि द्वितीयायां लाहोरनगरे बीकानेर वास्तव्य मंत्रि कर्मचंद्रकृत महोत्सवेन आचार्य पदं। सं० १६७० बेनातटे सूरिपदं। सं० १६७४ पौषवदि त्रयोदश्यां मेडताख्य नगरे स्वर्गप्राप्तिर्जाता ॥ ६२ ॥

६३. तत्पट्टे श्रीजिनराजसूरिः। तस्य च बोहित्थरा गोत्रीय साह धर्मसी पिता, धार-लदेवी माता। सं० १६४७ चै० सु० ७ जन्म, सं० १६५६ मि० सु० ३ बीकानेरे दीक्षा, राज-समुद्र इति नाम दत्तं। सं० १६६८ आसाउलिपुरे श्रीजिनचंद्रसूरिभिः वाचकपदं प्रदत्तं। ततः सं० १६७४ फा० सु० ७ मेडताख्ये नगरे चोपडा गोत्रीय साह आसकरणकृत महोत्स-वेन सूरिपदं जातं श्रीजिनराजसूरिरिति नामविहितं; तथा द्वितीय शिष्य बोहित्थरा गोत्रीय सिद्धसेनगणिः, तस्मै आचार्यपदं दत्तं, जिनसागरसूरिरिति नाम विहितं। ततो द्वादशवर्षाणि यावदाचार्यः श्रीपूज्यानां आज्ञायां प्रवृत्तः, पश्चात्समयसुन्दरोपाध्याय–शिष्य हर्षनंदनकृत कदाग्रहेण सं० १६८६ आचार्य जिनसागरसूरितो लघु–आचार्यीय–खरतर शाखा

भिन्ना। अयमष्टमो गच्छभेदो जातः। ततः श्री जिनराजसूरिभिः लोद्रवपत्तने श्री जेसलमेरु वास्तव्य भणशालिक साह थाहरू कारितोद्धार विहारशृंगार श्रीचिंतामणि-पार्श्वप्रतिष्ठा कृता। तथा सं० १६७५ वै० सु० १३ शुक्रे श्रीराजनगर वास्तव्य प्राग्वाटज्ञा० संघपति सोमजीपुत्र रूपजीकारित श्रीशत्रुंजयोपरि चतुर्द्वार विहारहारायमाण श्रीऋषभादि जिनैकाधिक पंचशत (५०१) प्रतिमानां प्रतिष्ठा विहिता। तथा पुनर्भाणुवडग्रामे साह चांपसीकारितदेवगृहमंडन श्रीअमृतश्राविपार्श्वनाथ प्रमुखाशीति (८०) बिंबानां प्रतिष्ठा विधायि। तथा पुनर्मेडताख्ये नगरे गणधरचोपडागोत्रीय संघपति श्रीआसकरणसाहकारित चैत्याधिष्ठायक श्रीशांतिनाथप्रतिष्ठा निर्मिता। एवमन्यत्रापि–राजनगराद्यनेकनगरेषु श्रीजिन-प्रतिष्ठा चक्रे। एवंविधाः श्रीजिनमतोन्नतिकारकाः, अंबकाप्रदत्तवरधारकास्तद्बलप्रकटित घंघाणीपुरस्थितचिरंतनप्रतिमाप्रशस्तिवर्णांतराः समस्ततर्कव्याकरणच्छन्दोलंकारकोशकाव्यादि-विविधशास्त्रपारिणो नैषधीयकाव्यसंबंधी जैनराजी–वृत्त्याद्यनेकनवीन ग्रन्थ विधायकाः श्रीबृहत्खरतरगच्छनायकाः श्रीजिनराजसूरयः सं० १६९९ आषाढ सु० ९ पत्तने स्वर्गभाजः। तदैव, सं० १७०० मिते उ० श्रीरंगविजयगणितो रंगविजय खरतर शाखा भिन्ना। अयं नवमो गच्छभेदः। ततस्तन्मध्यात् श्रीसारोपाध्यायतः श्रीसारीय खरतर शाखा भिन्ना। अयं दशमो गच्छभेदः। एकादशस्तु बृहत्खरतर नामा मूलगच्छः। एवमेकादशभेदः खरतर गच्छः।

६४. तत्पट्टे श्रीजिनरत्नसूरिः। तस्य च सेरूणाभिध ग्रामवास्तव्य लूणीयागोत्रीय साह तिलोकसी पिता, तारा देवी माता, रूपचंद्रेति मूल नाम। तथा निर्मलवैराग्येण मातृसहितेन दीक्षा गृहीता। ततः सं० १६९९ आषाढ सुदि सप्तम्यां श्रीजिनराजसूरिभिः सूरिमंत्रो दत्तः। ततश्च शुद्धक्रियाभ्यासिनोऽनेकपुरविहारकारिणः श्रीजिनरत्नसूरयः सं० १७११ श्रा० व० ७ अकबराबादे स्वर्गं गताः।

६५. तत्पट्टे श्रीजिनचंद्रसूरिः। तस्य च गणधरचोपडागोत्रीय साह सहसकरणः पिता, सुपियारदेवी माता, हेमराजेति मूलनाम, हर्षलाभेति दीक्षानाम। सं० १७११ भा० व० १० श्रीराजनगरे नाहटागोत्रीय साह जयमल्ल तेजसी मातृकस्तूरबाईकृत महोत्सवेन पद-स्थापना जाता। ततः श्रीगुरुभिर्योधपुरवास्तव्य साह मनोहरदासकारित श्रीसंघेन सार्धं श्रीशत्रुंजययात्रा कृता, तथा मंडोवरनगरे संघपति मनोहरदासकारित चैत्यशृंगार श्रीऋषभादि चतुर्विंशतिजिनप्रतिष्ठा विहिता। एवंविधा नानादेशविहारिणः सर्वसिद्धान्तपारगाः श्रीजिनचंद्रसूरयः सं० १७६३ श्रीसूरतबिंदरे स्वर्गं प्राप्ताः।

६६. तत्पट्टे श्रीजिनसौख्यसूरिः। तस्य च फोगपत्तन वास्तव्य साहलेचा बुहरागोत्रीय साह रूपसी पिता, सुरूपा माता, सं० १७३९ मार्गशीर्ष सुदि १५ जन्म, सं० १७५१ माघ वदि ५ पुण्यपालरग्रामे दीक्षा, सुखकीर्तिरिति दीक्षानाम। सं० १७६३ आषाढ सु ११ सूरतबिंदरवास्तव्य चोपडागोत्रीय पारिष सामीदासेन एकादश सहस्र रूपकव्ययेन पद महोत्सवः कृतः। तत एकदा घोघाबिंदरे नवखंडपार्श्वनाथयात्रां कृत्वा श्रीगुरुवः संघेन

सार्धं स्तंभतीर्थगमनार्थं प्रवहणमारूढास्तत्रसमुद्रमध्यभागे पोतस्याधस्तनफलकं भग्नं, ततो जलेन पूर्यमाणं पोतं विलोक्य गुरुभिः स्वेष्टदेवाराधनं चक्रे। ततः श्रीजिनकुशलसूरिसाहायेन अकस्मान्नवीनपोतप्रादुर्भावाज्जलधेः पारं लब्धं ततः स पोतोऽदृश्यो बभूव। एवंविधाः श्रीशत्रुंजयादियात्राविधायकाः सकलशास्त्रपारगा विजितानेकवादिनः श्रीगुरवस्त्रीणि दिनान्यनशनं कृत्वा सं० १७८० ज्ये० व० १० श्रीरिणीनगरे स्वर्गं प्राप्तास्तत्र तद्दिने देवैरदृष्टवादित्राणि वादितानि तत्पुराधीशादिसर्वलोकास्तद्वाद्यघोषं श्रुत्वाऽऽश्चर्यवन्तो जाताः ॥ ६५ ॥

६७. तत्पट्टे श्रीजिनभक्तिसूरिः। तस्य च इंदपालसर ग्रामवास्तव्य सेठगोत्रीय साह हरिचंद्रः पिता, हरिसुखदेवी माता। सं० १७७० ज्ये० सु० ३ जन्म भीमराजेति मूलनाम। सं० १७७९ माघसुदि ९ दीक्षा भक्तिक्षेमेति दीक्षानाम। सं० १७८० ज्येष्ठवदि ३ रिणीपुरे श्रीसंघकृतमहोत्सवेन गुरुभिः स्वहस्तेनाचार्यपदं दत्तं। ततो नानादेशविहारिणः सादडीप्रभृतिनगरेषु हस्तिचालनादिप्रकारेण प्रतिपक्षान् पराजयं नीत्वा विजयलक्ष्मीधारिणः सर्वसिद्धान्तपाठप्रचारिणः श्री सिद्धाचलादि सकलमहातीर्थयात्राकारिणः श्री गूढाख्ये नगरे अजितजिनचैत्यप्रतिष्ठाविधायिनो महातेजस्विनः सकलविद्वज्जनशिरोमणि—श्रीराजसोमोपाध्याय, श्रीरामविजयोपाध्यायादि—सत्परिकरसंसेवितचरणाः श्रीजिनभक्तिसूरयः कच्छदेशमंडनश्रीमांडवीविंदरे सं० १८०४ ज्ये० सु० ४ स्वर्गं प्राप्ताः। तत्र सायं अग्निसंस्कारभूमौ देवैर्दीपमाला विहिता। ईदृक् प्रभावका जाताः ॥ ६६ ॥

६८. तत्पट्टे श्रीजिनलाभसूरयः। तेषां च वीकानेरवास्तव्य वोहित्थरागोत्रीय साह पंचायणदासः पिता, पद्मादेवी माता। सं० १७८४ श्रा० सु० वापेउग्रामे जन्म, लालचंद्रेति मूलनाम, सं० १७९६ ज्येष्ठसुदि ६ जेसलमेरुनगरे दीक्षा, लक्ष्मीलाभ इति दीक्षानाम। सं० १८०४ ज्ये० सु० ५ श्रीमांडवीविंदरे छाजहडगोत्रीय साह भोजराजकृत नंदिमहोत्सवेन पदस्थापना जाता। ततः श्रीगुरवो जेसलमेरुवीकानेराद्यनेकपुरेषु विहारं कृत्वा सं० १८१९ ज्ये० व० ५, पंचसप्तति (७५) साधुभिः सार्धं श्रीगौडीपार्श्वेशयात्रां कृतवन्तः। ततः सं० १८२१ फा० सु० प्रतिपत्तिथौ पंचाशीति (८५) मुनिभिः सह श्रीअर्बुदाचलयात्रां कुर्वंति स्म। ततश्च घाणेराव—शादडीनामके नगरद्वये चोपडा वषतसाहादिकृतमहोत्सवेन समागत्य उपद्रवकरणाय सं० पक्षीयान् स्वबलेन पराजयं नीत्वा विजयवादित्राणि वादितवंतः। ततस्तद्देशराणपुरादि—पंचतीर्थीं वंदित्वा वेनातट-मेदिनीतट—रूपनगर—जयपुरोदयपुरादि—नगरेषु विहृत्य सं० १८२५ वै० सु० १५ अष्टाशीति (८८) मुनिभिःसार्द्धं श्रीधूलेवगढाधिष्ठायकऋषभदेवयात्रां कुर्वंति स्म। ततः पल्लिकासत्यपुर—राधनपुरादिषु विहृत्य श्रीसंखेश्वर पार्श्वयात्रां कृत्वा सेठ गुलालचंद सेठ भाईदास श्रीसंघाग्रहात्सूरतविंदरे समागताः। तत्र सं० १८२७ वै० सु० १२ आदिगोत्रीय साहनेमीदासांगज भाईदास कारित त्रिभूमप्रासादमंडन श्रीशीतलनाथ सहस्रफणपार्श्व गौडीपार्श्वाद्येकाशीत्यधिक शत (१८१) बिंब प्रतिष्ठां कृतवंतः। तथा सं० १८२८ वै० सु० १२ तत्रैव देवगृहे श्री महावीरादि द्व्यशीति (८२) बिंबप्रतिष्ठां कुर्वंति स्म। तदा देवगृहबिंब निर्मापण

प्रतिष्ठाद्वयविधानसंघभक्तिकरणादौ षट्त्रिंशत्सहस्र (३६०००) रूपकानि व्ययी भूतानि। ततश्च मुनिसुव्रतस्वामियात्रार्थं भृगुकच्छे समागताः। तत्र रात्रौ रेवातटे योगिनीकृत महाघनवृष्ट्युपद्रवेण व्याकुलीभूतं सर्वसार्थं स्वेष्टदेवस्मरणेन निराकुलं कृतवंतः। ततो राजनगरभावनगरादौ विहृत्य घोघाबंदरे नवखंडपार्श्वयात्रां विधाय पादलिप्तपुरे समागताः। तत्र सं० १८३० माघवदि ५, पंचसप्ततिमुनिभिः सार्द्धं श्रीशत्रुंजययात्रां कुर्वंति स्म। ततो जीर्णगढमागत्य सं० १८३० फा० सु० ९ पंचाधिकैकशत (१०५) साधुभिः सह श्री गिरनारमंडननेमिजिनयात्रामकुर्वन्। ततो वेलाकूलपत्तन–नव्यनगरादिषु विहृत्य कच्छदेशे मांडवीबिंदरे श्रीगुरुपदकमलस्थापनां वंदित्वा क्रमेण तद्देशाद्विहृत्य राउपुरनगरे श्री चिन्तामणिपार्श्वेशमभिवंद्य सं० १८३३ मिति चैत्र वदि द्वितीयायां श्री गौडीपार्श्वयात्रां चक्रुः। एवंविधाः परमसौभाग्यादिसद्‌गुणश्रेणिधारिणो महोपकारिणः श्रीजिनलाभसूरयः सं० १८३४ मिति आश्विन वदि १० श्री गूढानगरे स्वर्गं गताः ॥ ६७ ॥

६९. तत्पट्टे श्रीजिनचंद्रसूरयः। तेषां च वीकानेरवास्तव्य वच्छावतमुंहता रूपचंद्र पिता, केसरदेवी माता, सं० १८०९ कल्याणसरग्रामे जन्म, अनूपचंद्रेति मूलनाम। सं० १८२२ मंडोवरे पुरे दीक्षा, दयासार इति दीक्षानाम। सं० १८३४ आश्विन वदित्रयोदश्यां सोमे शुभलग्ने गूंढानगरे कूकडचोपडागोत्रीय दोसी लक्खासाहकृतोत्सवेन सूरिपदं जातं। ततस्तेगणाधीश्वरा महेवादिपुरेषु चैत्यान्यभिवंद्य श्रीगौडीपार्श्वेशं नत्वा क्रमेण जेसलमेरुवीकानेरादिषु चिन्तामणि पार्श्वनाथादि देवयात्रां कृतवंतः। तत्र जेसलमेरौ आवश्यकादि–योगक्रियां च विहितवंतः। ततोऽयोध्या कासी चंद्रावती पाटलीपुत्र चंपा मकसूदावाद संमेतसिखर पावापुरी राजगृह मिथिला दुतारापार्श्वनाथ क्षत्रिकुंडग्राम काकंदी हास्तिनागपुरादियात्रां व्यधुः। तदानीं पूर्व देशे श्रीलक्ष्याउनगरे नाहटागोत्रीयः सुश्रावको राजा वच्छराजाख्यश्चतुर्मासकत्रयं महोत्सवेन कारितवान्। तत्र बहुविस्तृतः प्रतिमोत्थापक–निन्हवमार्गः श्रीपूज्यैः स्वज्ञानबलेन निराकृतः, बहवः श्राद्धाः सन्मार्गं नीताः। श्रीपूज्यानां सुतरां महिमा प्रससार। तन्नगरासन्नोद्याने राज्ञा श्रीजिनकुशलसूरीणां स्तूपः कारितस्ततोविहृत्य श्रीगिरनारशत्रुंजयतीर्थयोर्यात्रां व्यधुः। तत्र पादलिप्तपुरे परपक्षीयैः सार्द्धं महान् विवादः समजनि; परं श्रीदेवगुरुप्रसादाज्जयप्राप्तिर्जाता, परपक्षीयाः पराजयं प्राप्य पलायितास्तदा तत्रत्य नृपादिभिर्बहुमानकरणात्पूज्यानां महिमा सर्वत्र सुतरां विस्तृतवान्। ततो वर्षानंतरं मोरवाडाभिधग्रामे श्रीगौडी पार्श्वेश यात्रार्थमागते साधिक लक्ष मनुष्यात्मक श्रीसंघे तत्रत्यामात्यादि प्रधानपुरुषवचनाद् द्वयोर्भट्टारकयोः परस्परमेलः संजातः। ततो दक्षिणदेशेऽन्तरिक्षपार्श्वेशयात्रां कृत्वा श्रीसूरत बिंदरे सं० १८५६ ज्ये० सु० ३ स्वर्गं गताः। एवंविधाः परमसौभाग्यधारिणः सकलजन्मनोहारिणः सर्वसिद्धान्ताध्ययनकारिणः सर्वत्रविख्यातकीर्तिभरा जंगमयुगप्रवराः श्रीबृहत्खरतर गच्छेश्वराः वाग्जितसुरेंद्रसूरयः श्रीजिनचंद्रसूरयः संजाताः ॥ ६८ ॥

———

गांभीर्यादिगुणग्रामवेश्मनां शुद्धचेतसां । श्रीजिनलाभसूरीणामाज्ञामादाय शोभनां ॥ १॥
श्रीजिनभक्तिसूरीन्द्रशिष्या बुद्धिवार्द्धयः । प्रीतिसागरनामानस्तच्छिष्या वाचकोत्तमाः ॥ २॥
श्रीमंतोऽमृतधर्माख्यास्तेषां शिष्येण धीमता । क्षमाकल्याणमुनिना शुद्धिसंपत्तिसिद्धये॥ ३॥
संवत्सरे व्योमकृशानुसिद्धि क्षोणी (१८३०) मिते फाल्गुन मासि रम्ये ।
विशुद्धपक्षे लिखिता नवम्यां गुरुस्तुतिर्जीर्णगढे नवासौ ॥ इति श्रेयः ॥

[अनुपूर्तिः]

७०. तत्पट्टे श्रीजिनहर्षसूरयः । तेषां वालेवाग्रामे जन्म, हीरचंद्रेति मूलनाम, मीठडियावुहिरागोत्रीय साह तिलोकचंद्रः पिता, तारादेवी माता । सं० १८४१ आऊग्रामे दीक्षा, हितरंग इति दीक्षानाम; सं० १८५६ ज्ये० सु० १५ श्रीसूरतबिंदरे श्रीसंघकृतोत्सवेन सूरिपदं जातं । श्रीजिनहर्षसूरिरितिनाम विहितं । तदा तस्मिन्नगरे श्रीसंघेन चैत्यबिंबप्रतिष्ठा करापिता । तथा सं० १८६० अक्षयतृतीयायां तिथौ देवीकोटवास्तव्य श्रीसंघकारित देवगृहे सार्द्ध शतबिंबानां प्रतिष्ठा व्यधायि । तथा पुनर्ज्झालोरनगरे मंत्रि अपयराजकारित देवगृहे प्रतिष्ठा निर्मिता । तथा सं० १८६६ चै० सुदि १५ गिडीयासंघपति राजाराम लूणीया गोत्रीय साह तिलोकचंद कृत संघे सपाद लक्ष श्राद्धैः एकादश शतसाधुभिः सह श्रीगिरनार—पुंडरीकादी यात्रामकुर्वन् । ततो गुरवः अनेक देशेषु विहृत्य सं० १८७० शिखरगिरिराज तीर्थस्य यात्रां चक्रुः । पुनरपि सं० १८७६ श्रीसंघेन सह शिखरगिरियात्रां चक्रुः । ततः पश्चाद् दक्षिणदेशे अंतरीक पार्श्वनाथ, मगसी पार्श्वनाथ, धुलेवगढ इत्यादि तीर्थयात्रां कुर्वता सं० १८८७ आषाढ सुदि १० तिथौ श्रीवीकानेरे श्रीसीमंधरस्वामिमंदिरे पंचविंशति बिंबानां प्रतिष्ठा निर्मिता । सं० १८८९ मा० सु० १० तिथौ श्रीवीकानेरे सेठियागोत्र साह अमीचंद कारित सम्मेतशिखर गिरिभावविराजितमंदिरस्य प्रतिष्टा विहिता । तस्मिन्नवसरे जेसलमेरवास्तव्य बाफणा साहबाहदरमल्ल जोरावरमल्लकस्य हृदये सिद्धाचलगिरियात्राविचारो बभूव । मनसीति विचारः समुत्पन्नः—यः सिद्धाचलगिरिं स्पृशति तस्य जीवितं सफलं भवति ' इति विचार्य सर्व परिवारेण सह विक्रमपुरे आगताः, महामहोत्सवेन बहुद्रव्यव्ययेन गुरवः वंदिताः, सप्तस्थानेषु बहु द्रव्यं दत्तं, तदा सर्व साधून् प्रति बहु वस्त्राण्यर्पितानि । तदा गुरवः श्रीसंघेन सह सिद्धाचलगिरियात्रां प्रतिचेलुः । अंतराले वर्षाकालस्समागतः । तदा गुरवः मंडोवरे चतुर्मास्यां स्थिताः । एवं विधाः जितानेकवादिनः जिनशासनोद्योतकराः गुरवस्तत्र मंडोवरे सं० १८९२ का० व० ९ चतुः प्रहराणि यावदनशनं प्रपाल्य स्वर्गगताः ॥

७१. तत्पट्टे एक सप्ततितमाः श्रीजिनसौभाग्यसूरयः । तेषां च मारवाडवास्तव्य स्वाई सेरडाग्रामे सं० १८६२ जन्म, सुरतरामेति मूलनाम, गणधर चोपडा कोठारी गोत्रीय साह करमचंदः पिता, करूणा देवीमाता, सं० १८७७ सिंधिया दोलतरावकस्य लस्करे दीक्षा शौभाग्यविशालेति दीक्षानाम, सं० १८९२ मार्गशीर्ष शुक्ल सतम्यां गुरुवारे शुभलग्ने श्रीमद्विक्रमनगरे खजानची साह लालचंद सालमसिंह कृतनंदी महोत्सवेन सूरिपदं जातं ॥

———

परिशिष्टम्.

[प्रत्यन्तरे ६२ तम पट्टपश्चात्–यावत् ७१ पतम पट्टपर्यन्तं निम्नलिखिता भिन्न पट्टपरंपरा समुपलभ्यते.]

६३. तत्पट्टे त्रिषष्टितमः जिनसागरसूरिः। तस्य च वोहित्थरागोत्रीयः श्रीवीकानेर-वास्तव्य साह वच्छराजः पिता, मिरगादे माता। सं० १६५२ वर्षे कार्त्तिकसुदि १४ रवौ अश्विन्यां जन्म, चोला मूलनाम। सं० १६६१ वर्षे माहसुदि ७ दिने अमरसरसि श्री जिनसिंह-सूरिणा दीक्षितः। श्रीमालचुहरा अचूका श्रावकैर्नंदीमहोत्सवः कृतः। वादी श्री हर्ष-नंदनगणिना बाल्यत आरम्य सर्वशास्त्राणि पाठितानि। सं० १६७४ वर्षे फाल्गुनसुदि सप्तम्यां मेडताख्ये नगरे चोपडागोत्रीय साह आसकरणकृतमहोत्सवेन सूरिपदं जातं, श्री जिनसागरसूरिरिति नाम विहितं। तथा द्वितीय शिष्य बोहित्थरागोत्रीय राजसमुद्र-गणिः, तस्मै आचार्यपदं दत्तं, जिनराजसूरिरिति नाम विहितं। ततो द्वादशवर्षाणि यावदा-चार्यः श्री पूज्यानां आज्ञायां प्रवृत्तः, पश्चात् आचार्य जिनराजसूरितः त्रिभिर्गच्छो विभिन्नः। तस्य व्यवस्था इयं–सं० १६९९ मिते बृहत् भट्टारक श्रीरंगविजयगणितो रंगविजय खरतर शाखा भिन्ना, अयं नवमो गच्छभेदः। ततः तन्मध्यात् श्रीसारोपाध्यायतः श्रीसारीय खरतर शाखा भिन्ना, अयं दशमो गच्छभेदः। ततः सं० १७१२ आचार्य जिनराजसूरीणां द्वितीय शिष्य रूपचंद्रेण लघु भट्टारक खरतर शाखा भिन्ना, अयं एकादशमो गच्छभेदो जातः। ततः भट्टारक श्री जिनसागरसूरिभिः सं० १६७४ वैशाख सुदि त्रयोदश्यां शुक्रे श्रीराज-नगरवास्तव्य प्राग्वाटज्ञातीय संघपति सोमजीपुत्र रूपजीकारित श्री शत्रुंजयोपरि चतुर्द्वार विहारहारायमाण श्रीऋषभादिजिनैकाधिक पंचशत (५०१) प्रतिमानां प्रतिष्ठा विहिता। एवंविधाः श्रीजिनमतोन्नतिकारकाः, अंबिकाप्रदत्तवरधारकाः, समस्ततर्कव्याकरण-च्छंदोलंकारकोषकाव्यादि विविधशास्त्रपारिणः, स्थाने स्थाने सर्वत्र श्रावकैर्मानिताः, परम-संवेगवंतः, भाग्यसौभाग्यवंतः, भट्टारक श्रीजिनसागरसूरयः श्री अहमदाबादनगरे सं० १७२० वर्षे ज्येष्ठवदि तृतीयायां एकादशवासराऽनशनं विधाय, स्वपट्टे श्री जिन-धर्मसूरींद्रान् संस्थाप्य, सर्वशिष्याणां शिक्षां दत्वा स्वर्गं जग्मुः। अयमष्टमस्तु बृहत्खरतरनामा मूलगच्छः। एवमेकादशभेदः खरतर गच्छः॥ ६३॥

६४. तत्पट्टे चतुषष्टितमः श्रीजिनधर्मसूरिः। स च भणशालीगोत्रीय श्रीवीकानेर-वास्यव्य सा० रिणमलभार्या रतनादेपुत्रः, सं० १६९८ वर्षे पौषसुदि २ अभिजित् नक्षत्रे जन्म, खरहथ मूलनाम। सं० १७.......वर्षे वैशाखसुदि ३ दिने श्रीजिनसागरसूरिणा दीक्षितः। वादि श्री हर्षनंदनगणिना बाल्ये वयसि सर्वशास्त्राणि पाठितानि। सं० १७११ वर्षे माघ-सुदि १२ आचार्यपदमहोत्सवः चर्द्ध (?) भार्या विमलादे कृतः। सं० १७२० वर्षे श्री विक्र-

मपुरे भट्टारक पदमहोत्सवः गोलवच्छा अचलदासजीकेन कृतः। ततो भट्टारक श्रीजिनधर्मसूरिभिः साह उग्रसेन रतनकृत श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथ संघयात्रा कृता, पुनः शत्रुंजये षष्ठाष्टमादितपः कृतं, सर्वदेशेषु सर्वक्षेत्रेषु विहारः कृतः। सं० १७४६ वर्षे मृगसिरवदि ८ श्रीजिनचंद्रसूरीणां गच्छभारं स्वकीयपट्टे समर्प्य श्री लूणकरणसरसि नगरे स्वर्गं गताः ॥६४॥

६५. तत्पट्टे पंचषष्ठितमः श्रीजिनचंद्रसूरिः। वावडीयग्रामवासी बुहरागोत्रीय साह सांमलदास साहिवतयोः पुत्रः, सं० १७२९ वर्षे जन्म, सुखमल्ल नाम। सं० १७३८ वर्षे श्रीजिनधर्मसूरिपार्श्वे दीक्षा गृहीता। सं० १७४६ वर्षे मृगसिरसुदि १२ लूणकरणसरसि भट्टारक पदं प्राप्तं, तदुत्सवश्च छाजहड रतनसी जोधाणीकेन कृतः। ततः सर्वदेशेषु विहृत्य सं० १७८५ वर्षे श्रीवीकानेरमध्ये श्रीजिनविजयसूरीणां आचार्यपदं दत्तं। ततः सं० १७९४ वर्षे ज्येष्ठसुदि १५ दिने श्रीवीकानेरनगरे सर्वायुः ६५ वर्षाणि प्रपाल्य स्वर्गं गताः ॥ ६५ ॥

६६. तत्पट्टे षष्टषष्ठितमाः श्रीजिनविजयसूरयः। कीदृशाः–नाहटागोत्रीय साह डुंगरसी दाडिमदेपुत्र, सं० १७४७ वर्षे जन्म, नाम रतनसी। सं० १७५२ वर्षे श्रीजिनचंद्रसूरिपार्श्वे दीक्षा। सं० १७८५ वर्षे श्रीवीकानेरमध्ये आचार्यपदं प्राप्तं, तदुत्सवः श्री हाजीखांनडेरा वास्तव्य डेहरा थाहरुमल्लकेन कृतः। सं० १७९४ वर्षे श्री वीकानेरमध्ये भट्टारकपदं प्राप्तं, तदुत्सवश्च डागा पुंजाणी कृतः, प्रभावना बाई फूलां कृता। सं० १७९७ वर्षे आसो वदि ६ दिने जेसलमेरुदुर्गे दिवं गताः ॥ ६६ ॥

६७. तत्पट्टे सप्तषष्ठितमाः श्रीजिनकीर्त्तिसूरयः। तेषां च मारवाडवास्तव्य खीवसरा गोत्रीय साह उग्रसेन पिता, उच्छरंगदेवी माता, सं० १७७२ वर्षे वैशाख सुदि सप्तम्यां फलवर्द्धीनगरे जन्म, किसनचंद्रेति मूलनाम। सं० १७९७ जेसलमेरु मध्ये भट्टारक पदं प्राप्तं। अनेक देशेषु विहारं कृत्वा पूर्वदेशे समेतशिखरादि तीर्थे यात्रां कृत्वा मुकसुदाबाद मध्ये चतुर्मासकत्रयं कृतं, पश्चात् ततो विहारं कृत्वा अनुक्रमेण श्री विक्रमपुरे प्राप्तः। पश्चात् सं० १८१९ विक्रमपुरे दिवं गताः ॥ ६७ ॥

६८. तत्पट्टे अष्टषष्ठितमाः श्री जिनयुक्तसूरयः। तेषां च मारवाडवास्तव्य बुहरा गोत्रीयः साह हंसराज पिता, लाछलदेवी माता, सं० १८०३ वैशाखसुदि पंचम्यां जन्म, मूलनाम जीमणेति। सं० १८१५ भट्टारक जिनकीर्तिसूरिणा स्वहस्तेन दीक्षिताः। अनेकशास्त्रपारगा एतादृशाः, सं० १८१९ भट्टारकपदं श्री विक्रमपुरे प्राप्तं, तदुत्सवश्च गोलेच्छा कृतः। ततो विहारं कृत्वा श्री जेसलमेरुदुर्गे सं० १८२४ आसो वदि द्वादश्यां स्वर्गं गताः ॥ ६८ ॥

६९. तत्पट्टे एकोनसप्ततितमाः श्रीजिनचंद्रसूरयः। तेषां च ग्राम भगूवास्तव्य रेहडगोत्रीय साह भागचंद्र पिता, माता च भक्तादेवी। सं० १८०३ चैत्रसुदि चतुर्दश्यां जन्म। सं० १८२० युगप्रधान श्री जिनयुक्तसूरिणा स्वयमेव दीक्षा दत्ता, ततो व्याकरणादि समग्रसिद्धान्तपारगाः, परमतखंडन प्रवीणाः, एवंविधा बभूवुः। सं० १८२४

श्री जेसलमेरदुर्गे आचार्यपदं प्राप्तं, तदुच्छवश्च लक्षव्ययेन भूपाल मूलसिंघेन नंदि-महोत्सवो कृतः। अथान्यदा रतलामपुरे चतुर्मासी कृता, तत्र जिनबिंबस्य प्रतिष्ठामकरोत्। ततः श्री शत्रुंजयादि यात्रां कृत्वानुक्रमेण विक्रमपुरं अगमत्। अथान्यदा श्री आचार्यस्य मुखात् धर्मं श्रुत्वा विक्रमपुरस्य राजा परमश्रावको जातः। एवंविधा जिनचंद्रसूरयः जेसल-मेरदुर्गे सं० १८७५ कार्तिक सुदि पूर्णिमायां स्वर्गं गताः ॥ ६९ ॥

७०. तत्पट्टे सप्ततितमः श्री जिनउदयसूरिः। स च सौवमपालग्रामवास्तव्य बोत्थरागोत्रीय साह जयराजपिता, जयदेवी माता तयोः पुत्रः। सं० १८३२ माघ सु० सप्तम्यां जन्म। सं० १८४७ मृगसिरसुदि तृतीयायां भट्टारक श्री जिनचंद्रसूरिणा दीक्षा दत्ता। सं० १८७५ मृगसिरसुदि पंचम्यां जेसलमेरदुर्गे आचार्यपदं प्राप्तं, तत्र तत्पट्टमहो-त्सवः संघवी तिलोकचंद्रेण सहस्र द्रव्यव्ययेन नंदिमहोत्सवः कृतः। अथान्यदा मंदसोर पुरेऽगमत्, तत्र सं० १८९३ वैशाखसुदि तृतीयायां ऋषभजिनस्य बिंबं प्रतिष्ठितं। पुनः विक्रमपुरे सं० १८९७ वैशाखसुदि षष्ट्यां श्री शान्तिनाथबिंबं प्रतिष्ठितं। सं० १८९७ वैशाखसुदि त्रयोदश्यां दिने विक्रमाख्ये पुरे स्वर्गमगमत् ॥ ७० ॥

७१. तत्पट्टे एकसप्ततितमः श्रीजिनहेमसूरिः ॥ गो....त्रीयः साणियाला ग्राम वास्त-व्यः साह पृथ्वीराज भा० प्रभादेवी तयोः पुत्रः, सं० १८६६ वर्षे आसाढशुक्ल प्रतिपदायां पुष्यनक्षत्रे जन्म, हुकमचंद मूलनाम। सं० १८८३ वर्षे वैशाखसिते तृतीयायां श्रीजिन-उदयसूरिणा दीक्षितः। दीर्घदर्शी कस्तुरचंद्रजीगणिना बाल्यावस्थायां शास्त्राणि पाठितानि। सं० १८९७ वर्षे ज्येष्ठशुभ्रदले पंचम्यां तिथौ श्री विक्रमपुरे भट्टारकपदमहोत्सवः डागा मुरतरामजीकेन कृतः। ततो भट्टारक श्री जिनहेमसूरिभिः इंदोराख्यपुरे ऋषभेश्वरबिंब-प्रतिष्ठा कृता, तत्र श्री संघस्य द्विधाभावं निवार्यानंतरं मनोदग्रामे श्री पार्श्वप्रभोर्बिंबप्रतिष्ठा विहिता। पश्चात् श्री शत्रुंजयादि तीर्थयात्रां कृत्वा सर्वदेशेषु विहृत्य विक्रमपुरे प्राप्तः। तस्मिन् चिरं पदं भुक्तवान्।



॥ खरतरगच्छ पट्टावली ॥

[३]

अथ पट्टावली लिख्यते। प्रथमं श्रीउद्योतनसूरिः। सुविहितचक्रचूडामणिरुत्कृष्टक्रियाकर्ता जिनशासनसाधुमार्गप्रकाशको बभूव। एकदा मालवदेशात् बहुश्रीसङ्घसहितैः श्रीशत्रुञ्जयतीर्थयात्रार्थं गच्छद्भिर्मध्यरात्रौ आकाशे रोहिणीशकटमध्ये बृहस्पतिः प्रविष्टो दृष्टः। श्रीसूरिभिरुक्तं 'यदि साम्प्रतं सूरिपदं यस्य दीयते स गच्छाधिपतिर्महान् भावी, गच्छस्य वृद्धिं प्राप्नोति; गवेषिताः साधवः परं पार्श्वे नोपलभ्यते'। तदा गणेशेनोक्तं भवच्छिष्यो वृद्धाख्योऽस्ति तस्य दीयतां यदि वेलामाहात्म्यमस्ति अयमपि भाग्याधिको भविष्यति। वासो नास्ति। गोछगणकचूर्णेन लुंकडीयावडवृक्षाधः स्थापितो वर्धमानसूरिः श्रीउद्योतनसूरिभिः। क्रमेणाथ श्रीवर्धमानसूरयो बहुपरिवारा जाताः। तस्मिन्नवसरे विमलदण्डनायकेन गुर्जरराज्ञा सम्मानितेनार्बुदाचलधरित्र्यां आरासननगरे अम्बायाः कुलदेव्याः प्रासादः कारितस्तत्रागम्य स्वप्ने देव्या दर्शनं दत्तं। खड्गं गृहाणेत्युक्त्वा रुप्यत्रम्बकपानी दर्शिते च तया। ततस्तेन महत् सैन्यं कृत्वा देवीमाहात्म्येन चतुर्विंशति देशा गृहीताः। छत्राणि अग्रे ताड्यन्ते वणिक्कुलत्वात् शीर्षे न स्थाप्यन्ते तस्येति। सौराष्ट्रादिमहादेशेषु प्रौढाज्ञां प्रतिपालयन् बहुकालं निनाय। सः अन्यदाऽर्बुदाचलेऽगात् श्रीभार्यासुप्रभातपुत्राभ्यां सार्धं। शुभस्थानमालोक्य श्रीः प्रोचे विमलं स्वामिन्नत्र स्थले चेत् जिनप्रासादः कार्यः ते तदा महान् लाभो भवति। द्विजाः पृष्टाः प्रोचुरिदमस्मदीयं तीर्थं न कदाचिज्जैनतीर्थमत्रासीत्। इत्युक्त्वा विप्रैर्महान् कलिः प्रारब्धः, मरणाय बहवो ब्राह्मणा उद्यता जाताः। तस्मिन्नवसरे श्रीवर्धमानसूरयः समेताः विमलेन वन्दिताः पृष्टाश्च, भगवन् अत्र जैनं चैत्यं नास्ति अहं तत् चैत्यं कारयामि। परं विप्रैरेतादृशं कर्म प्रारब्धं किं क्रियते। अत्रचेत् जिनप्रतिमा निर्गच्छति तदा एते यान्ति। ततः श्रीसूरिभिः सपादकोटि सूरिमन्त्रजापेन धरणेन्द्रं समाहूय तस्याग्रे वार्ता उक्ता, तेन त्वरितमेव श्रीआदिनाथप्रतिमा धनुःपञ्चाशादधःस्थाद्दर्शिता। अत्र तीर्थंकरप्रतिमासीत् इत्युक्त्वा ततो विमलेन सर्वे द्विजा मेलिताः। यत्रेयं मालापतति ततोऽधो जिनप्रतिमा। क्रमेण निःसृता जिनप्रतिमा। द्विजाः प्रोचुर्भवदीयं तीर्थं पुरासीत् परमधुनास्माभिः गृहीतं। महीं मौल्येन दास्याम इति। कृपालुना विमलेन मधुकरीभिर्धरा पूरिता अन्तरालधरा तिष्ठति सापि पूरिता, पञ्चकं तत्र जातं विमलेन हठात् चिन्तितं सर्वोऽप्ययं गिरिर्मया स्वर्णमुद्रया गृहीष्यते। द्विजैरचिन्ति तीर्थमस्मदीयं सर्वं यास्यतीति विचिन्त्य स्तोकैव धरा दत्ता। तत्र महान् श्रीआदिनाथप्रासादः कारितः। अथैकदा श्रीसूरयः सरस्वतीपत्तने जग्मुः। शालायां स्थिताः स्वशिष्यान् तर्कं पाठयन्ति। तदा जिनेश्वरबुद्धिसागरौ विप्रौ श्रुत्वा तर्कशालायां समेतौ। वादः कृतः गुरुभिर्दयाधर्मो व्याख्यातः। ताभ्यामूचे दयावन्तो विप्रा एव। सूरिभिरुक्तं न विप्रेषु दया प्राप्यते।

ताभ्यामुक्तं कथं नेति। गुरुभिः सातिशयैर्बभाषे युवयोः शिरसि मृतमत्स्योऽस्ति। ताभ्यां तथैव दृष्टः। प्रतिबुद्धौ द्वाभ्यामपि दीक्षा गृहीता। पठितानि सम्यग् शास्त्राणि। गुरुभिः पट्टे स्थापितः जातः श्रीजिनेश्वरसूरिः॥ अपरो भ्राता आचार्यो बुद्धिसागरः। अन्यदा गुर्जरधरित्र्यां श्रीअनहिल्लपाटके श्रीसूरयः समेताः। तत्र दुर्लभो राजा अतीव-विज्ञः षट्दर्शन पूजकः। तत्र चैत्यवासिनोऽतीवप्रमत्ताः साधुजनद्वेषिणः सन्ति। श्रीजिनेश्वरसूरिः, भ्राता बुद्धिसागराचार्यः स्वमातुलगृहमागतः। चैत्यवासिनां निर्णीतिर्जाता। प्रभाते राज्ञः सभायां चैत्यवासिनः समेताः। श्रीगुरवोऽपि राज्ञा पृष्टा युष्माकं मध्ये के सदाचाराः। गुरुभिरुक्तं ये सिद्धान्तप्रोक्तमार्गानुयायिनस्ते सत्याः। राज्ञा निजकन्या भाण्डागारे मुक्ता, हे कन्ये त्वं पुस्तकं यथारुचि गृहीत्वा समानय। सा गता प्रथमत एव दशवैकालिकसूत्रं समानीतं सभा समक्षं, चैत्यवासिनः पुस्तकं गृहीत्वा वाचयन्ति स्म। गुरुभिरर्थोऽभिहितः। साध्वाचारे गोचर्याधिकारे पत्र चतुष्कमाच्छादितं। गुरुभिरुक्तं—राज्यपर्षदि स्तैन्यं जायते। पत्राणि निर्वासितानि। एतेऽसत्यवादिनस्तस्कराः। यूयं खरतराः, इति सत्यवादिनः। गुरुभिरुक्तमेते कोमलाः इति। ततः श्रीगुरुभिः खरतरबिरुदं प्राप्तं।

दससय चिहु वीसेहि नयरपाटण अणहिलपुरि। हुओ वाद सुविहित चइवासीसु बहुपरि।
दुलभनरवइ सभासमुपि जिणि हेलइ वजित्तउ। चित्तवास उत्थपिअ देस गूरजरहिव दित्तउ।
सुविहितगच्छखरतर बिरुद दुलभनरवइ तिहां दियउ।
श्रीवर्धमान पट्टइ तिलउ सूरि जिणेसर गहगह्यउ॥

गच्छस्थापना जाता। बहवः श्रावका बभूवुः।

२. तेषां पट्टे श्रीजिनचन्द्रसूरयः। मोजदीन पातिसाहस्य पिंजारकगृहस्थितस्य उक्तमभूत्, यथायं ढिल्यां मालवोपि पातिसाहो भविष्यति। ततः क्रमेण कस्यापि म्लेच्छस्य पवासो जातः। एकदा पातिसाहेनोक्तं म्लेच्छस्य एव सेवको सवालोऽस्माकं देहि। तेन दत्तः। शतवर्षीयो मृतावस्थाप्राप्तः पातिसाहः क्षणं यावत् सचेतः क्षणं अचेतो भवति। तदा पातिसाहपुत्रो मोजदीनः पिंजारकपुत्रो पि पवासो नाम्ना मोजदीनः। पवासः तिष्ठन् पार्श्वे परिचर्यां करोति, तावत् प्रधानपुरुषैरुक्तं स्वामिन् पुत्रस्य राज्यं देहि। तेनोक्तमवसरे दास्यामि। अन्यदा मध्यरात्रौ श्वासश्चटितः, ज्ञातं म्रियते, आकारितः पुत्रो मोजदीनः। पुत्रस्य निद्रा समेता। खावासेन ज्ञातं परिचर्यार्थं मामाकारयति। आगतः पवासः पुत्रभ्रान्त्या शिरः टोपी तस्य शिरसि न्यस्ता, पद्मः करे दत्तः। स्वयं प्रणामः कृतः। मिलिताः प्रधानाः प्रोचुः—स्वामिन् किंकृतं? नामभ्रांत्या पवासस्य राज्यं दत्तं। पातिसाहेनोक्तं—मया यत् दत्तं तत दत्तमेवेति। सत्पुरुषवाक्यं नान्यथा स्यात्। पुत्रः प्रणष्टः खवासस्य राज्यं जातं मोजदीनपातिसाहिरिति।

अथ श्री जिनचन्द्रसूरिभिर्ज्ञातं स एव पिंजारकपुत्रोऽस्मत्कथितः पातिसाहिर्जातः। ढिलीमण्डले साधूनां विहारो नास्ति। अनेक मुल्ला-सेख-काजी-प्रमुखैर्द्वेषिभिर्निवारितो। वयं यामो येन साधूनां विहारो भवेदिति विमृश्य तत्रागता गुरवः। श्रीमालधनपालगृहस्थिताः।

तेनोक्तम्—'श्रीपूज्यानामत्रागमनं दुःखाय भविष्यति । सो आगतोऽस्ति । धनपालो जगाम तथैवोवाच च । प्रभाते महोत्सवेन समानीताः गुरवः । पतितः पादयोः । सर्वत्र देशे साधूनां विहारो जातः । बहवः श्रावका जाताः । धनपालकटाकजाता महुतीयाण गोत्रीया इति ।

मुहुतीयाण डादुइ जिण नमइ कइ जिण कइ जिणचंद ।

तस्य पद्मावती प्रत्यक्षासीत् गुरुभिरुक्तं—अस्माकं गच्छो यथा वर्धते तथा कुरु। देव्योक्तं गच्छो वर्धिष्यते, चतुर्थपट्टे भवदीयं नामदेयमिति। तेन दीयते स तु प्रायो भव्यो भवति ।

तच्छिष्यः श्रीअभयदेवसूरिः । षोडशवर्षे आचार्यपदं । प्रथमे दिनेऽतिशृङ्गाररसो व्याख्यातो, लोका हर्षिताः । परं गुरुभिरुक्तं—शिष्य, शृङ्गाररसोऽत्रीव साधुभिर्न वर्ण्यते । यतो विनाशो भवति धर्मस्य । त्वं नीरागी, परं लोकाः सरागाः सन्तीति । तदोत्थाय साधुसमक्षं षट्विकृतित्यागं विदधाति स्म । टूबर छासि जलं एतत् द्रव्यत्रयं गृहीष्यामीत्यभिग्रहं ललौ । क्रमेण गलितकुष्टी जातः । गलिताः नासिकाद्याः शरीरावयवाः मुखवस्त्रिकामपि गृहीतुं न शक्नोति । तदा त्रम्बावतीपुरश्रावकाणां पुरतः प्रोचे गुरुभिः, चेत् संघः कथयति तदाहमनसनं गृह्णामि । सङ्घेनोक्तं प्रातः । ततो रात्रौ शासनदेवता आगता कथितं नवैताः सूत्रकोकड्यः संति ता उद्धर। तेनोक्तं अङ्गुलीभिर्विना कथमुद्धरामि। तयोक्तं—सेटिकानदीतीरे पाषरापलाशतरुतले धेनुर्दुग्धं स्रवति तत्र श्रीस्तम्भनकपार्श्वनाथप्रतिमास्ति नागार्जुनेन क्षिप्तास्ति । तत्र गत्वा निजबुद्धया स्तवनं कृत्वा तिष्ठ, तत्स्नानोदकेन स्वर्णसमशरीरं ते भविष्यति । ततः प्रभाते श्रीसङ्घपुरतो वार्ता कथिता । सङ्घो जहर्ष । श्रीसङ्घेन समं श्रीगुरवस्तत्र गताः । गोपालेन दर्शितः पलाशः । नवीनस्तोत्रं कृतं 'जयतिहुयणवरकप्परुक्ख' इत्यादि स्तवनप्रभावेन प्रकटिता श्रीस्तम्भनकपार्श्वेश प्रतिमा । श्रीसङ्घेन पूजा कृता । स्नानोदकेन गतो रोगः सकलोऽपि । श्रीजिनशासनमहिमा जातः । सकलदेशे बहवः श्रावका जाताः । ततोऽन्यदा शासनदेवी समायाता । तयोक्तं त्वयोक्तमभूत् हस्ते सज्जीकृते कोकडीरुद्धरिष्यामि, तदधुनोद्धर । नवाङ्गानां वृत्तिं कुरु । ततो नवाङ्गानां वृत्तिः कृता, प्रतिमा षंभायतनगरे स्थापिता । जयतिहुयणद्वात्रिंशिका सर्वे श्रावकश्राविकाभिः पठिता । तत्र प्रान्तगाथायां धरणेन्द्रपद्मावत्योराकर्षणमन्त्रं समानीतं नायोऽपित्रापठन्ति (?)। ततः कुप्यतस्तौकेनापि धेनुदुग्धाग्रहणावसरो गुणितं स्तवनं सेहलात् सर्पो बभूव (?)। ततः सूरिभिर्द्वे गाथे भण्डारिते, विना कष्टं न जप्येते इति । श्रीअभयदेवसूरिराचार्यो जातः न भट्टारकस्तेन नामादौ जिनपदं न दत्तमिति । अथ श्रीगुरुणा श्रावक एकः प्रतिबोधितः परमजैनधर्मवासितः, स मृत्वा देवलोकं गतः । देवलोकात् तीर्थंकरवन्दनार्थं महाविदेहे गतो देशनानन्तरं श्रीसीमन्धराः पृष्टाः—मम गुरवोऽभयदेवसूरयः कतमे भवे मुक्तिं गमिष्यन्ति । उक्तं प्रभुणा तृतीये भवे । पृष्टो वोधोति वेदितं श्रीअभयदेवसूरीणां यतः—

भणियं तित्थयरेहिं महाविदेहे भवंमि तइयंमि। तुम्हाण चेव गुरुणो सिग्घं मुत्तिं गमिस्संति।

कर्पटवाणिज्ये नगरे श्रीअभयदेवा दिवं गताः चतुर्थदेवलोके विजयिनः सन्ति ।

अन्यदा चित्रकूटे कचोलाक्षा आचार्याः सन्ति, तेषां शिष्यो वल्लभाभिधः। स तु अत्यन्तसंवेगी परं सर्वशास्त्राणि अधीतानि। यः कोऽपि नवीनः पण्डित आगच्छति तस्य वादेन जित्वा स्वर्णकचोलकं गृह्णाति, तेन भोजनं करोति, तेन नाम्ना कचोलवृक्षाभिधः। अन्यदा पडीगणार्थं आचार्या ग्रामं गताः। वल्लभस्योक्तं सर्वं पुस्तकं तवायत्तमस्ति परमेषा अपवरिका नोद्घाट्या। ततस्तेन सैवैकान्ते दृष्टा। एकादशाङ्गानि वाचितानि। ज्ञातः साधुमार्गः। गुरुणा पृष्टं, सिद्धान्तकारणकथितं, यतिरहं भवामि भवदाज्ञया। ततो दत्तादेशः खरतरगच्छे श्रीअभयदेवसूरिपार्श्वे दीक्षा गृहीता। अत्यन्तवैराग्यवान् जातः। श्रीअभयदेवसूरिभिः अन्त्यसमये प्रोक्तं—वल्लभस्य पदं देयं। ततो गच्छवासिनः पदं न प्रयच्छन्ति, कौमल्योयं न विश्वासोऽस्य। एकदा त्रिस्थानको गुरुः चित्रकूटे गतः। चामुण्डाप्रसादे स्थितः। शिष्यमेकं मुक्त्वा स्वयमाहारार्थं गतः। पश्चात् शिष्येण चामुण्डाअक्षिणी उत्पाटिते क्रीडया, शिष्य अंधो जातः। आगतो गुरुः, शिष्येण प्रवृत्तिरुक्ता। तत्रैव स्थित्वा एकविंशतिकाव्यैश्चामुण्डा प्रतिबोधिता। शिष्यः सज्जीकृतः। देव्या हिंसा त्यक्ता, गुरोर्महान् लाभो जात इति। तथा वागडदेशे श्रावका बहवो प्रतिबोधिताः—दशसहस्र प्रमाणाः। संघपट्टनामा ग्रन्थो विहितः लघुर्वृद्धोऽपि। पिण्डविशुद्धिनाम शास्त्रं कृतं। शुद्धमार्गः प्ररूपितः। वर्ष १२ यावत् आचार्यैर्गच्छो निर्वाहितः, तदा मधुकरखरतरगच्छो निर्गतः। सौराष्ट्रदेशे प्रसिद्धः। चिन्तामणिपार्श्वनाथप्रासादे प्रशस्ति—काव्याष्टकं लिखितमस्ति। तथा 'भावारिवारण' स्तवनं निजनामरहितं कृतं। चित्रवालगच्छनायकेन गृहीतं। चैत्रकूटे चैत्यानिर्णये जाते चरणे पतितः ततो निजनामस्तोत्रे समानीतं। षण्मासायुषि पट्टो दत्तः। संवत् ११६७ वर्षे आसाढवदि ६ दिने पट्टे स्थापना श्रीदेवभद्रसूरिणा कृता श्रीचित्रकूटे। ततो मृत्युअवसरे गच्छेषु गवेषितो वाचनाचार्य जयदेवशिष्यः जिनदत्ताभिधः हुंबडज्ञातीयः पट्टार्थे। श्रीजिनवल्लभः स्वर्गतः।

ततः श्रीसंघेन समाकारितः श्रीजिनदत्तः सर्व शास्त्रवेत्ता मार्गे आगच्छन् सारंगपुरे एकः कौमल्यौपाध्यायस्तस्य शिष्याः सन्ति परमतीव मन्दमतयः, पाठकस्य तदा मरणावस्था समेता, कोऽपि नाराधनाकारकस्तादृग् विद्वान्, तदा तं तथाविधं समालोक्य ज्ञातमरणो जिनदत्तः करुणापरो धर्ममनशनलक्षणं तस्मै ददौ। सोऽपि दिनत्रयमनशनं प्रतिपाल्य महर्धिको देवोऽभूत्। तेन जिनदत्तोपकारं स्मरता रात्रौ प्रत्यक्षं समेत्योचे तव सान्निध्यं सर्वदा करिष्यामि। परं तव पट्टाभिषेको मुहूर्तत्रयं गवेषितमस्ति, प्रथमे षण्मासे मृत्युः; द्वितीये गच्छस्फोटो भविष्यति, तव गच्छान्निष्कासनं; तृतीये सुंदरं भावीति। परमियं प्रवृत्तिर्मम न कस्याप्यग्रे वाच्या। ततः समागतो जिनदत्तः प्रथममुहूर्ते कायोत्सर्गे स्थितः। वेला व्यतीता। द्वितीयेऽपि कायोत्सर्गः समारब्धः साधुश्रावकैर्निषिद्धः। ततो द्वितीये मुहूर्ते स्थापितः। संवत् ११६९ वर्षे वैशाख सुदि १० दिने सन्ध्यालग्ने श्रीदेवभद्रसूरिणा, चित्रकूटे श्रीमहावीरभवने, नाम श्री जिनदत्तसूरिरिति जातं। सर्वेऽपि साधवः स्वीयस्थाने गताः। इतश्चैको महात्मा श्रीजिनवल्लभेन गच्छान्निष्कासितोऽभूत्, असह्यप्रतिरूपणापराधेन। स तदा समागतः ममोपरि कृपां कुरुत।

गुरुभिः क्षिप्तः । आगताः साधवः । अहारार्थं मुखवस्त्रिकां प्रति लेखयतो गुरोश्चोलपट्टः स्फाटितो, ज्ञातं गच्छो द्विधा भविष्यति । तदा वारिकरणावसरे त्रयोदशाचार्यैरुक्तं एष बाह्यः कृतोऽस्ति, अस्य दृष्ट्या आहारो न कर्तव्यो भवद्भिः । गुरुभिरुक्तं—अयं क्षिप्तो मया गच्छे । कुपिता आचार्याः—अद्यैव स्वयं कर्ता जातः । अयोग्योऽयमस्माकं न पृच्छति । सर्वैर्मिलित्वा निष्कासितो गुरुर्गच्छात् । ततः पट्टाभिषेककारकस्य श्राद्धस्योक्तं सूरिणा वर्षत्रयं यावत् मम मार्गोऽवलोक्यो भवता, यदि मम माहात्म्यं भवति तदाहमेव भवतो गुरुः, नान्यथेति । त्रिस्थानकेन निर्गतो गुरुः क्रमेण विक्रमपुरे समागतः । तत्र मरकोपद्रवो महान् । जनैः पृष्टा गुरवो, गुरुरूचे—यस्य चत्वारः पुत्राः सन्ति स एकं मह्यं ददातु, यस्य च तिस्रः पुत्र्यः स एकां चेति । तैर्भणितं गते उपद्रवे दास्याम इति । ततो गुरुणा 'तं जयउ' इति नाम स्तवनं कृतं । तन्माहात्म्येन शान्तिर्जाता । तत्रैव पुरे पञ्चशतप्रमाणाः शिष्या जाताः । साध्वीनां त्रिशतं जातम् । सर्वेऽपि श्रावका जाता इति । ततो विहृत्य गुरवो नारनउलपुरे गताः । तत्रैश श्रीमालश्रावकस्य जामाता विवाहसमये एव मरणधर्मं प्राप्तः । तेन सार्धं कन्याया अपि काष्ट-भक्षणं कारयन्ति जनाः । सा भीता गुरूणां पार्श्वे समेता । तदा गुरुभिरुक्तं पित्रोः 'अयुक्त-मेतत् क्रियते'। पितृभ्यामुक्तमावयोर्नित्यशल्यं भविष्यति । गुरुभिर्गृहीता कोमल्यसाध्वीनां दत्ता 'त्वया एषा पाल्या।' तस्याः पार्श्वे द्वादश वर्षाणि स्थिता । ततो गुरुभिर्दीक्षिता । तस्या वस्त्रे बह्व्यः षटपद्यः पतन्ति । साध्वीभिरुक्तं गुरूणां एषा अतीवाहण्डा एतस्या वस्त्रे पतन्ति यूकाः । गुरुभिरुक्तं एषा सप्तशतसाध्वीनां मुख्या भविष्यति । तदैव तस्याः साध्व्याः सर्वाः शिक्षिणीत्वेन दत्ताः, महत्तरापदं च दत्तं । कौमल्यसाध्व्या सा महत्तरा पृष्टा त्वयास्माकं किमपि कथनं करणीयं, अस्माभिस्त्वं पाठिता । तयोक्तं—वदत किंकरोमि । ताभिरूचे—धर्म ध्वजे दशाकाः प्रलम्बाः कार्या इति । प्रतिपन्नं तद्वचः, अद्यापि तथैव जायते इति । तदा गुरूणामतीव माहात्म्यं वर्धते स्म । आचार्यैः पुनर्गच्छे समानीता गुरवः । सर्वेऽपि साधवो गुर्वाज्ञायां प्रवर्तते स्म । ततस्तेभ्य एक आचार्यो निर्गतो रुद्रपल्लीयगच्छो जातः । अन्यदा जिनदत्तसूरय सिन्धुदेशं प्राप्ताः । तत्र मूलत्राणे चतुर्मासं स्थिताः । तत्र कोमल्यगच्छीयाः श्रावकाः महर्द्धिकाः, खरतराः सामान्याः । तैरुक्तं खरतराणां महत्त्वपातकं करोमि (कुर्मः)। तदा हाथी इति नामा लूणियागोत्रीयः श्रावकः सामान्योऽस्ति । अथ यदा धर्मदेशनावसरे हाथी श्रावकः समागच्छति तदा श्रीजिनदत्तसूरिः प्रभूतं सत्कारं ददाति । अन्ये श्रावकाः कथयन्ति—किमर्थमस्य बहु सत्कारं दत्थ । गुरुभिरुक्तं—एष हस्ती राजद्वारे शोभते । महति कार्ये समेष्यत्यसौ । अन्यदा कौमल्यश्रावकैर्बहु धनं दत्वा पातिसाहिर्वशीकृतः, कथितं च तैः खरतराणां शिरच्छेदं कुरु । साहिनोक्तं—कथं ज्ञास्यन्ति खरतराः, कथं च भवन्तः । तैरुक्तं ये कौमल्यास्ते तिलकं विधाय मस्तके समेष्यन्ति, ये तु तिलकवर्जितास्ते खरतरा इति। तां वार्तां श्रुत्वा हस्ती रात्रौ गुरुसमीपे समेतो वार्ता चोक्ता । गुरुणोक्तं—त्वं याहि बीबीपार्श्वे सुन्दरं भविष्यति । सोऽपि बीबीपार्श्वे गत्वोवाच झगिति । ममाद्य मरणं, तेनाहं मिलनाय समेतः ।

तस्या अग्रे वार्ता प्रोक्ता। सापि गता साहिपार्श्वे एष हस्ती मम भ्राता। अनेन सार्धमहमपि मरिष्यामि। साहिनोक्तं—प्रभाते वैपरीत्यं विधास्यामि, मा कुरु चिन्तां। प्रगे कौमाल्यश्रावकाः सतिलकाः सर्वेऽपि समेताः खरतरा अतिलकाः। पतिसाहिना बभाषे—कपाटं दत्वा ये सतिलकास्ते सर्वेऽपि वध्याः, ये तु अतिलकाः ते न वध्याः। ततः सर्वेऽपि मरणभयेन तिलकमपनीयापनीय हस्तिपृष्टौ लग्नाः। सर्वेऽपि खरतराः सिन्धुमण्डले। तदा गुरुभिर्हस्तीकस्य अजितशान्तिस्तवो दत्तः। अन्यदा गुरूणां प्रोक्तं मिलित्वा सिन्धुदेशस्थैः श्रावकैः 'अमास्कं गृहे यथा बहुधनं भवति तथा कर्तव्यं। गुरुभिरुक्तं—नागपुरात् परतो गत्वा मकडाणा ग्रामे द्वात्रिंशदङ्गुलप्रमाणं प्रतिमां कारयित्वाऽमुकनक्षत्रेऽमुकवेलायां च, ततस्तां रुतमध्ये प्रक्षिप्यात्रानयत यूयं परं मार्गे न कस्यापि गृहे मोक्तव्यम्। ततस्तां शुभवेलायां स्थापयिष्यामि। यत्रतत्र लक्ष्मीः स्थास्यति त्वयमिति। ततस्ते तत्र गताः, प्रतिमा कारिता, तेऽन्तरा नागपुरे समेताः। तत्र पुरे शान्तिसूरिनामाचार्यस्तिष्ठति। तेन रात्रौ लक्ष्मी उद्यमाना कैश्चित् दृष्टा। उत्थितो ध्यानेन कश्चन देवं समाह्वयति स्म। सोऽप्यागतः, प्रोचे प्रतिमया सार्धं लक्ष्मीर्याति, जिनदत्तसूरिराकर्षति। प्रतिमा अप्रतिष्ठिताऽस्तीति। प्रभाते तेन श्रावकाणामग्रे प्रोक्तं—एते सिन्धुदेशीया वणिज आयाताः सन्ति तान् सर्वानपि मन्त्र्य भोजयत, यथा लक्ष्मीर्नागपुरान्न याति। श्रावकैर्गत्वा ते सर्वेऽपि निमन्त्रिताः भोजिताश्चेति। तत स्तेनाचार्येण रुतमध्यस्थिता प्रतिमा प्रतिष्ठिता अञ्जनशिलाकया तत्रैव रक्षिता, तैः श्रावकैर्न ज्ञाता तामेव प्रतिमां लात्वा गुरुसमीपे समेताः। गुरुभिरुक्तं—रछोहरीया यथा याताः, किं कृतं, प्रतिमा प्रतिष्ठिता सूरिणा लक्ष्मीस्तत्रैव स्थितेति। तैरुक्तं—पुनरन्यमुपायं कथयत, सावधानतया तं करिष्याम इति। गुरुभिः कृपापरैर्भूय उक्तं—भटनेर नगरे श्रीमहावीरप्रासादे श्रीमाणिभद्रयक्षप्रतिमास्ति तामानयत। ततश्चत्वारः श्रावकाः व्यापारमिषेण तत्र गताः, नित्यं जिनार्चां कुर्वन्ति। अन्यदा लब्धावसराः प्रतिमां गृहीत्वा निर्गताः। पृष्टतो बाहरिका अपि चलिता ज्ञातव्यतिकराः। क्रमेण सिन्धुदेशे उच्चनगरे रिपडीनद्याः पार्श्वे पञ्चनद्यो वहन्ति, पञ्चनद्योर्ण जलं। तत्र ते समेताः, बाहरका अपि समाजग्मुः। ते प्रतिमां गृहीत्वा नद्यां प्रविष्टाः। ते अपि प्रविष्टाः। तद्भयेन प्रतिमा तैर्नद्यां मुक्ता। बाहरकाः संशोध्यालभमानाः प्रतिमां गताः परभूमिभिया। तैः समाचारा जिनदत्तसूरीणां निवेदिताः। गुरवोऽपि नद्यां समेताः। आराधितो माणिभद्रः। प्रत्यक्षी भुत्वोवाच—अहमत्रैव स्थास्यामि बहिर्नागच्छामि। अत्रैव स्थितः, सान्निध्यं करिष्यामि। ततः श्रीजिनदत्तसूरि पार्श्वे माणिभद्रयक्षेण सप्त वरा मार्गिताः। तद्यथा—भट्टारको यः पञ्चनदीः साधयति स सिन्धुमण्डले समेति १। सूरिः सदा सूरिमन्त्रसहस्रप्रमाणं जपेत् २। सामान्यसाधुः शतत्रयप्रमाणं जपेत् ३। खरतर श्रावक उभयोः सन्ध्ययोः सप्त स्मरणानि पठति ४। श्राद्धः प्रतिगृहं द्विशतप्रमाणां क्षिप्रचटीं पठति ५। श्राद्धः प्रतिगृहं आचाम्लद्वयं मासमध्ये करोति ६। पदस्थो यो भवति स एकाशनेन भुञ्जते ॥ तथा श्रीजिनदत्तसूरीणां सप्त वराः प्रदत्ताः माणिक्यभद्रेण। तद्यथा—प्रतिग्रामं श्राद्ध एको मुख्यः सधनश्च भविष्यति १। श्राद्धः

सर्वथा निर्धनो न भविष्यति २। खरतरः श्राद्धः कुमरणेन न मरिष्यति ३। साध्वीनां रतिर्न समेष्यति ४। भवन्नाम गृहीते विद्युन्न पतिष्यति ५। निर्धनः श्राद्धो यः सिन्धुदेशे समेष्यति स सधनो भविष्यति ६। भवन्नाम्ना शाकिन्यो न लगिष्यन्ति ७। श्रीगुरूणां पार्श्वे सर्वदा समेति। परस्परं प्रीतिर्जाता। एकदा पीरैः पार्श्वात् रूप्यमुद्राशतं दर्शितं, गुरुभिः सुवर्णमुद्रासहस्रकं दर्शितं आसनाधः। एकदा पीरे स्थिते साधवः आहारार्थं गताः म्लेच्छैरुक्तं—अस्माकं भोजनं देयं। तैरुक्तमयुक्तमेतत्। गुरुभिस्ते म्लेच्छाः समाहूताः, उक्तं चात्र तिष्ठत, भोजनं दापयिष्यामः। श्रावकानाहूय तेषां मिष्टभोजनं कारितं। एवं वारद्विकं, तेन ते सन्तुष्टाः। एकदावसरे संग्रामे मृताः। संजाता देवाः। रात्रौ श्रीगुरूणां स्वप्नान्तरे प्रत्यक्षी बभूव। कुत्रास्माकं स्थानं? श्रीपूज्यैरुक्तं—पञ्चनद्यां, यत्र माणिभद्रो यक्षोऽस्ति तत्र यूयमपि वसत। भोजनं याचितं तथैव गुरुभिर्दापितं, सन्तुष्टाऽतीव। एकदा देराउरस्वामीहिंदुको राजपुत्रः स क्रमेणातीव निर्धनो बभूव। गुरूणां पार्श्वे समेतः साधूनां भारवाहको जातः, सुखेनाजीविकां करोति। गुरवस्तुष्टाः। तेन देराउर-दुर्गः कारितः। सोमाख्यस्तस्य सेवकोऽभूत्। सोऽन्यदा संग्रामे प्रहारैर्जर्जरीकृतः गुरुभिरनशनं दत्तं। मृत्वा व्यन्तरो जातः सोमाहः। सोऽपि समेतो गुरुः पार्श्वे स्थानं देहीति वदन्। गुरुभिः पञ्चनद्यां स्थापितः। अथ तत्र देशे सिलेमा पर्वते तत्र पोडीयो क्षेत्रपालः, स देशाधि-ष्ठायकः। माणिभद्रप्रमुखा देवास्तमूचुः—प्रथमतः ये तव पूजां करिष्यति पश्चाद्वयं पूजां तस्य ग्रहिष्यामः नान्यथा। तेन प्रथमतः स पूज्यते, ततो माणिभद्रः सपीरः। एकदा श्रीगुरुभिरुक्तं—'प्रतिवर्षं न कोऽपि भवतां पूजां करिष्यति, ये ऽस्माकं पट्टस्थायी भविष्यति स एकशो विस्तारेणा-गत्यात्र पूजां करिष्यति' इति पद्धतिः विहिता। खरतरगच्छाधिष्ठायकाः पञ्चनदीत्रास्तव्यदेवाः सुप्रसन्ना भविष्यन्ति। इति पञ्चनदीपूजास्थापना विचारः॥

एकदा श्रीजिनदत्तसूरयो ढिल्यां गताः। तत्र चतुःषष्टियोगिनी—पीठानि सान्ति। न वन्दन्ते स्म। कुपिता योगिन्यश्चिन्तितं 'छलयाम एनं'। अथैकेन व्यन्तरेणागत्य गुरूणां प्रोक्तं—अत्र योगिन्यः सान्ति, भवतः छलिष्यन्ति, सावधानतया स्थेयं। श्रीपूज्यैः रात्रौ महणसी नामा श्रावकस्तं समाहूय प्रोक्तं चतुःषष्टिः नवा पट्टलिकाः कारयित्वा समानय। महत्कार्यमस्ति। तेन रात्रावेव आनीताः। श्रीपूज्यैः मन्त्रिताः। प्रातर्व्याख्यानावसरे एकस्य श्रावकस्योक्तं चतुः-षष्टिः श्राविकाः एकेन टोलकेनाद्य समेष्यंति। दक्षिणदिशि स्थास्यन्ति श्वेतवस्त्राः। तासां पट्ट-लिका एताः प्रदेयाः। व्याख्यानावसरे समेताः, श्राद्धेन दत्ताः, सर्वस्थिताः। श्रीगुरुभिर्मन्त्र-प्रभावेण स्थंभिताः। व्याख्यानानन्तरं गुरुभिरुक्तं यात, प्रभाते पुनरागन्तव्यं। ता लज्जिताः। अयं महाविद्यापात्रं स्वापराधं क्षामयंतिस्म। वयं यामः। गुरुभिरुक्तं—किञ्चिदस्माकं प्रयच्छत। ताभिः सप्त वरा दत्तास्तद्यथा—खरतरसाधुः प्रायो मूर्खो न भविष्यति १। साध्वी स्त्रीधर्मं न यास्यति २। खरतरसाधुसाध्वीनां न सर्पान्मृत्युः ३। खरतराणां वचनसिद्धिः ४। विद्युतो न भयं ५। शाकिन्यो न च्छलिष्यन्ति ६। श्रीखरतर श्रावकाः ढिल्याः परतः सर्वेऽपि धनवन्तः

पण्डिताश्च भविष्यन्ति ७। इति सप्त वराः प्रदत्ताः। योगिनीभिरुक्तं—एकमस्माकमपि वचनं कुरु। यथा भवदीयः पट्टे यः कोऽपि गच्छनायको भाविष्यति ढिल्यां अजयमेरौ भरुकच्छे उज्जयिन्यां यद्यायाति तदा भोजनं कृत्वा याति रात्रौ न तिष्ठति। यदि रात्रौ तिष्ठति तदा भोजनं न करोति इति वाक्यं दत्वा गता निजस्थानं। अन्यदा श्रीजिनदत्तसूरयो वडनगरे गताः। तत्र द्विजा बहवोऽतीव द्विषः साधूनाम्। एकदा एका गौः म्रियमाणा जिनचैत्ये प्रवेशिता, सा रात्रौ मृता, द्विजा हास्यं कुर्वन्ति—एषां देवा गौघातकाः। तत्र नगरे रीतिः—चाण्डालाः पुरमध्ये नागच्छन्ति, प्रतोलीं यावत् स्वामिनो निकासयन्ति। ततस्ते गृह्णन्ति। मिलिताः सर्वे श्रावकाः परं चैत्यद्वारं लघु, तां निर्वासितुं न कुर्वन्ति। श्रीपूज्यानामुक्तं श्रावकैः—' एतत् विप्रैः कृतं भवदीर्ष्यया। श्रीपूज्याः सुप्ताः, शिष्यानां प्रोक्तं—'मम वस्त्रं नोद्घाटनीयं चतुर्दिक्षु सप्तस्मरणानि पठनीयानि। परकायप्रवेशिनीविद्याबलेन मृता गौरुत्थिता, जिनगृहात् ईश्वरप्रासादे पिण्डिकाया उपरि पतिता, जन समक्षं महाचित्रं जातम्। सर्वे द्विजाश्चरणे पतिताः। स्वामिन् देव गृहाद् गामपनयत। श्रीपूज्या न मन्यन्ते ततः सर्वैर्विप्रैर्मिलित्वा इति वचनं कृतं यदा खरतरगच्छाधिपतिर्वडनगरे समेष्यति तदा प्रवेशोत्सवं विप्रा एव विधास्यन्तीति। रात्रौ धेनुरुत्थाय पुराद्बहिः पतिता। इति परकायप्रवेशिनीविद्या।

अन्यदा गूर्जरधरित्र्यां नागदेवः श्रावकः चित्ते चिन्तयति ' श्रीवीतरागैरुक्तमस्ति सर्वदा एको युगप्रधानो भवति। तं वन्देऽहं, परं न ज्ञायते। तत्रार्थे सोऽम्बिकाङ्के श्रीगिरनारगिरौ गतः। उपवासत्रयं कृतं प्रत्यक्षा जाताऽम्बिका। तेनोक्तं—कथयास्मिन् काले को युगप्रधानो ?। अम्बिकयोक्तं—हस्ते तवाक्षराणि लिखित्वा ददामि। य एतानि प्रकटयिष्यति स त्वया युगप्रधानो ज्ञेय इति। तेनोक्तं—हस्तेन कथं भोक्ष्ये ? आशातना भविष्यति देव्योक्तं—न काप्याशातना, याहि त्वं। ततः स पत्तने समेतः। प्रतिशालमाचार्याणां दर्शितो हस्तो। न कोऽपि वाचयति। प्राप्तखेदोऽतीवागतो जिनदत्तसूरिसमीपे नागदेवः। पूज्यानां हस्तो दर्शितः। वासक्षेपः कृतः, प्रकटितान्यक्षराणि। यतः

दासानुदासा इव सर्वदेवा यदीयपादाब्जतले लुठन्ति।
मरुस्थलीकल्पतरुः स जीयात् युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः॥

इत्यक्षराणि प्रकटितानि। हर्षितोऽभून्नागदेवः। प्रणति स्म गुरून्। सर्वत्रापि प्रसिद्धिर्युगप्रधानोऽयं।
नागदेव वरसावएणं उज्जंतिवडेविण, पुच्छिय जुगगुरु कहउ तिण्णि उववास करेविण।
अंबिक हु परतक्खि हत्थि तिण अक्खर लिक्खिय, सोवणमय करि प्रकट सोय आचारिज लक्खिय
करि वासखेव अणहिल्लपुरि जुगपहाण संजमतिलउ,
जिनदत्तसूरि सुविहितगुरु श्रीखरतरगच्छ गुणनिलउ॥

अन्यदा श्रीउचनगरे जिनदत्तसूरीणां प्रवेशमहोत्सवो जातः, मिलिताः स्वदेश-परदेशीया जनाः। तत्र एको मुलाणापुत्रः सप्तवार्षिकः पतितः चरणप्रहारैर्मृतो। मिलिता म्लेच्छजनाः साधूनामुपाश्रये घोरं विधास्यामः। नगरे महानुपद्रवो जातः। साधवो गंतुं समेतुं च न

शक्नुवन्ति। श्रीपूज्यैरुक्तं—जीवन्नसौ कथं भूमौ प्रक्षिप्यते। ततो रात्रौ परकायप्रवेशिनीविद्या प्रारब्धा। एको व्यंतरश्चाकर्षितः। बालकशरीरे प्रक्षिप्तः। व्यंतरेणोक्तं—कदाहं छुटिष्यामि? गुरुभिरुक्तं—म्लेच्छानामग्रे 'एष बालो यदा महिषीमांसं अत्स्यति तदा मरिष्यति' इति कथयित्वा जीवितो बालः। मासत्रिके मांसं भुक्त्वा पतितः। एकदावसरे अजमेरौ प्रतिक्रमणावसरे विद्युद् अतीव प्रकाशते उजेहीभवति। ततः श्रीगुरुभिः प्रासुकजलेनाभिमंत्र्य स्तंभिता। कृते प्रतिक्रमणे मुक्तेति। श्रीअणहिलपत्तने भांडशालिक आभू सुश्रावकोऽभूत्। तस्मिन्नवसरे श्रीपूज्या मूलत्राणे नगरे गताः। श्रावकैर्महान् प्रवेशोत्सवो विहितः। तत्र पत्तने वास्तव्यान्यपक्षीय अंबड-नामा श्रावकोऽभूत्। तेनोक्तमत्रैवंविधः महाप्रवेशोत्सवः क्रियते। अस्मत्पत्तने एवंविधः क्रियते तदा ज्ञायते भवतां शक्तिः। ततः श्रीगुरुभिरुक्तं—अस्माकं तत्राप्येवंविधः प्रवेशोत्सवो भविष्यति परं त्वं तत्र प्रवेशोत्सवे जायमाने निर्धनो मस्तके पोट्टलिकां कूटिकां हस्ते च बिभ्रत् मिलिष्यसि। तत्तथैव जातं। गुरवः पत्तने समेताः। स गुरूणामुपरि द्वेषं वहति। कपटश्रावको जातः। ततः पारणकदिने अतिथिसंविभागं कृत्वा शर्करापानीयमध्ये विषप्रयोगं चकार। तथा गुरुर्विषार्दितो जातः। ततः आभूसुश्रावकेण योजनगामिनीमुष्ट्रिकां प्रेषयित्वा देवतादत्तो रसकूपकः प्रल्हादनपुरादानीतः। तेनामृतरसेन निर्विषा बभुवु गुरवः। ततः सोऽम्बडः कर्म्मवशान्मृत्वा दुष्टव्यंतरो जातः। गुरूणां पार्श्वतो भ्रमति छलनाय। अन्यदा रात्रौ पाट्टिकोपरि सुप्तानां रजोहरणं पपात। तत्पातेन गुरवः ससंभ्रमा जाताः। छालिता व्यंतरेण। ततः प्रभातसमये आभूश्रावकप्रमुखः श्रीसंघो मिलितः। नानाप्रकारो उपचारो विहितः परं तथापि स दुष्टव्यंतरो न मुंचति गुरुं। ततः श्रावकआभूपुत्री व्यंतरं प्रोचे अस्मत्कुटुंबे अष्टादश मनुष्याः संति मदीयाः, तान् सर्वान् गृहाण, परमेनं गुरुं मुंच। व्यंतरेणार्चिति किमेष सत्यं ददाति नवेति व्याकुलोऽभूत्। गुरवः सावधाना जाताः। शिखातो गृहितो व्यंतरः। मोचितोऽत्याग्रहेणाभूसुश्रावकेणेति। ततः श्रीजिनदत्तसूरयो वर्ष ८४ आयुः प्रतिपाल्य अजयमेरौ स्वर्गं गताः। तत्र स्तूपं संघेन कारितं।

संवत १२०५ वैशाखसुदि ६ दिने श्रीविक्रमपुरे श्रीजिनदत्तसूरीणां स्वहस्तेन पदे स्थापितः नवम वर्षे गृहीतदीक्षः श्रीजिनचंद्रसूरिः। तस्य शिरसि मणिरभूत्। स तु एकदा वीरनाथयोगींद्रेण दृष्टः। तेन ज्ञातं एतस्य पंचवर्षायुरस्ति। ततो गुरवो ढिल्यां गताः। तत्र योगिनीभिरुक्तं—अनेनास्मदाज्ञालोपिता अथैनं छलयामः। ततो योगिन्यो रात्रौ समागताः धर्मध्वजमाहात्म्येन छलं तासां न लगति। तदा मूषकरूपेणापहृतो धर्मध्वजः। श्रीगुरवो जजागरुः। मार्जारीरूपेण धाविताः। छलिता गुरवस्ताभिः। प्रभातेऽनशनं कृत्वा कोचरश्रावकस्याग्रे चोक्तं गुरुभिः—मम मस्तके मणिरस्ति स दागसमये श्मशाने पार्श्वे दुग्धपात्रं स्थापनीयं तस्य मध्ये पतिष्यति। स गृहे पूजनीयोऽक्षयं धनं भाविष्यति। ततः श्रीपूज्ये परलोके प्राप्ते कोचरस्य सा वार्ता विस्मृता। परं योगिना दुग्धपात्रं मंडितं दाघकाले। मणिं लात्वा गतो योगी। दृष्टो वणिजा कोचरेण कलहः कृतः। परं न ददाति।

ततः श्रीजिनचंद्रपट्टे संवत् १२२३ वर्षे कार्त्तिक सुदि १३ बब्बेरक ग्रामे श्रीजयदेवाचार्येण १४ वर्ष प्रमाणानां पदं दत्तं। श्रीमालतांबी गोत्राभ्यां सा. रामदेव सा. मानदेवाभ्यां महोत्सवश्चक्राते। श्रीजिनपत्तिसूरिर्बालभावे चारित्रं गृहीत्वा प्राप्तपदः पंचशतसाधुपरिवारेण हिंसारसमीपे हांसी नगरे समेतः। श्रीपार्श्वनाथप्रतिमा श्रावकैः कारिता। श्रीजिनप्रासादो नवीनः कारितः। प्रतिष्ठावसरे नरमणिग्राही योग्यपि तत्रागतः। योगिना ज्ञातं अस्य गुरोः पार्श्वे विद्याऽभूत्, अस्य पार्श्वेस्ति न वेति परीक्षार्थं चैत्ये प्रतिमा स्तंभिता। स्थानान्न चलति। जनानामग्रे योगी वक्ति मयैषा स्थंभितास्ति युष्माकं गुरुरुत्थापयतु। तत आचार्या उपाध्यायाश्च सविषादा जाताः। विद्या कस्यापि पार्श्वे नास्ति। ततः प्रतिष्ठांतरायो जातः। तदा साध्व्या शिक्षिता नार्यो गायंति 'बालचंद्रः चंद्रिकां न करोति, अयं बालो गुरुः किं जानाति'। गुरुभिश्चिंताकृता 'धिग् मे जीवितं'। एकदा श्रीपूज्येन सूरिमंत्रगोलको वीक्षितो मध्ये सार्धतृतीयाक्षरो मंत्राधिपो स्थितः। निर्वास्य गुरवो जपंति स्म। पद्मावती समेता। प्रभाते आचार्याः पाठका व्याख्यानं कुर्वंति, तावत् बालकैः परिवृतो गुरुः क्रीडां कुर्वन् चैत्ये गतः। प्रतिमा स्तंभिताऽस्ति योगी वक्ति। शिरसि वासक्षेपं कृतं, स्तंभितश्च सः। श्रीसंघः सर्वोपि मिलितः। जाता प्रतिष्ठा अहो गुरूणां लघूनामपि माहात्म्यं। योगी वक्ति मां मोचय, कृपां विधाय। गुरुभिरुक्तं ढिल्यां मम गुरुशिरोमणिस्त्वया गृहीतोऽस्ति तमर्पय। योगिना दत्तो मणिः। उक्तं चाहो महाभाग्य! इमां विद्यां गृहाण परमस्य विधिरेवंरूपो वर्तते तांबुलप्रयोगे सिद्ध्यति। गुरुभिरुक्तं अस्माकं तांबूलभक्षणं न युक्तं, विद्या सिद्ध्यतु मा वा। ततो योगिना मुखात्तांबूलं निर्वास्योक्तं हे विद्ये! याहि पातालं, तवास्मिन् लोके ग्राहकोऽन्यो नास्ति। ततः पातालं गता। ततः श्रीगुरुभिः षट्त्रिंशत् भट्टमिश्राणां वादे जेता गच्छसूत्रानां सूत्रधारः गच्छसमाचारी प्रवर्तकः परमसंवेगी। तस्य वारके नेमचंद्रो भंडारीगोत्रीयस्तस्य पुत्रो देवदत्तः, तेनोक्तमहं चारित्रं गृहीष्यामि। नेमचंद्रेणोचे प्रथमतोहं परीक्षां करोमि। यदि कोपि शुद्धचारित्रप्रतिपालको मिलति तदा तत्समीपे गृण्हीयाश्चारित्रं। चतुरशीति गच्छवासिनो गवेषितास्तेन परं 'जे जे दीसंति गुरू समय परिकवायति न पुञ्जंति' इत्यादि भग्नपरिणाम आगतः सरस्वतीपत्तने जिनपत्तिसूरीणामुपाश्रये। रात्रौ समुत्थितः अलसेलकूपिका दृष्टा, ज्ञातं घृतमस्ति। कूणके वर्षाकालार्थं रक्षापि दृष्टा ज्ञातं चूर्णमस्ति। प्रातर्दृष्टं, ज्ञातं एते संवेगिनः। ततः स्वकीयगृहे गत्वाऽष्टवार्षिको निजपुत्रो दत्तस्तेन, दीक्षितश्च गुरुभिः। स्वर्गं गते गुरौ संवत् १२७८ माघ सुदि ६ दिने।

श्रीसर्वदेवसूरिणां दत्तपदो जावालपुरे पट्टाभिषेकः श्रीजिनेश्वरसूरिः स्थापितः। परं अभिणितो मूर्खः। पूज्यैर्मरणकाले श्रीलब्धिचंद्रोपाध्यायानां भलामणिर्दत्तः। स तु न पाठयति भट्टारकं, किंतु स्वयमेव व्याख्यानादिकं करोति, गर्वं वहति, यथा मूर्खः श्रीपूज्यः अहं विद्वान्। अन्यदा वाग्भटमेरुमध्ये आगताः। तत्र महावीरवसतिं दृष्ट्वा द्वारं संकीर्णं चैत्यं बृहत्। प्रधानं चावादीद् गुरुः 'बृहा नंटा वसही वड्डी अंदारि कित उत्त मइ माणी' इति वचनात् प्रकटितो

मूर्खभावः। ततो गता अणहिल्लपुरपत्तनं,। सरस्वती नदीतीरे। उत्तीर्णा नदी। पूज्यैश्चिंतितं-प्रातः संघो मिलिष्यति, नाहं व्याख्यानं कर्तुं समर्थः, तस्मान्मरणमेव मम सुंदरं; इति विमृश्य स्वयमुत्थितः सूरिः। सूरिमंत्रं परित्यज्य प्रविष्टो नद्यां मरणाय। ततो भाग्योदयात् सरस्वती-तुष्टा, वरमिति ददौ—त्वं महान् विद्यावान् भवेः। पश्चादागत्य सुप्तः। प्रभाते मिलिताः सर्वे लोकाः पूज्याः स्थिताः। लब्धिचंद्रश्चिंतयति—ममादेशः कथं न दीयते भट्टारकाः!। तावदेव गुरुभिर्नवीनकाव्येनोपदेशोदत्तः। तद् यथा—

अर्हंतो भगवंत इंद्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्तसुपाठका मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः
पंचैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वंतु वो मंगलम् ॥ १ ॥

इत्यादिना चमत्कृत उपाध्यायः अनेक श्रावकाः प्रतिबोधिताः।

श्रीजिनपत्तिसूरिपट्टे जिनेश्वर सूरिः [तद्] वारके श्रीपत्तने कुमारपालराजा प्रतिबोधकः, श्रीहेमाचार्यः, त्रिकोटीग्रंथकर्त्ता, अष्टादशदेशेऽमारिघोषणाकारकः, अष्टौ सहस्राः तुरगा गलितजलपानं कुर्वंति। तेन राज्ञा हेमाचार्याग्रे प्रोक्तं यदि सुवर्णविद्या भवति तदाहं विक्रमा-दित्यसंवत्सरं दूरीकृत्य कुमारसंवत्सरं करोमि। हेमाचार्येणोक्तं—खरतरगच्छे श्री हरिभद्र-सूरिशिष्यैरानीतं बौद्धपुस्तकमस्ति, तस्य मध्ये सुवर्णसिद्धिविद्यास्ति। ततः सर्वे खरतर श्रावकाः गौर्जरातीयाः सौराष्ट्रीयाः कच्छपांचालाः समुद्रोपकंठीयाः कारागारे क्षिप्ताः। तेषां भूपः शरीरेऽतिव्यथां करोति स्म। तैः श्रावकैर्मिलित्वा गुरूणां पत्रं मुक्तं—वयं युष्माकं श्रावकाः, एष कुमारपालः कदर्थयति। नो येषां रुचि पुस्तकं मोच्यमेव। ततः श्री जिनेश्वरसूरिभिश्चि-त्रकूटे चिंतामणिपार्श्वनाथप्रासादे भांडागारे पुस्तकं निर्वास्य प्रदत्तं। क्रमेणागतं पत्तने। महोत्सवेनानीतं। श्री कुमारपालाद्याः सप्तशतमनुष्याः सश्रीकाः अन्ये पि बहवो जनाः शालायां स्थिताः संति। दृष्टं पुस्तकं हेमाचार्येण। उपरि लिखितमस्ति 'इदं पुस्तकं न छोटनीयं, न वाचनीयं;-किंतु भांडागारे पूजनीयं।' ततः शंकितो मनसि हेमाचार्यो न छोटयति। तदा हेमाचार्यभगिनी हेमश्री महत्तराऽस्ति, तयोक्तं—छोटयंतु। तैरुक्तं—इदं लिखितमस्ति—'यः छोटयिष्यति तस्य श्री जिनदत्तसूरीणामाज्ञास्ति' तेन बेभेमि। महत्तरयोक्तं को जिनदत्तः, न कोपि भवदीयसमो गच्छाधिपः। अहं छोटयामि। कुमारपालेन दत्तं। तया छोटितमात्रे दवरके तत्कालं नेत्रद्वयं पतितं। अन्धा जाता। पुस्तकं भांडा-गारे मुक्तं। रात्रौ वह्निर्लग्नः सर्वं पुस्तकं प्रज्वलितं। तत्पुस्तकमाकाशमार्गेण बौद्धानां समीपे गतं।

श्री जिनेश्वरसूरिपट्टे संवत् १३३१ आसौजवदि ५ दिने जावालपुरे पट्टाभिषेकः श्री जिनप्रतिबोधसूरिः। तद्वारके लघुतर खर गच्छो निर्गतः।

श्री जिनसिंहसूरिः। श्रीमालज्ञातीयः। साधिता तेन पद्मावती। तयोक्तं षण्मासावधि-रायुरस्ति, नाहं ददामि किंचित्। तेनोक्तं मम मोघं देवदर्शनं। तयोक्तं झुझणूं नगरे तांबी

श्रीमालगोत्रे वणिगस्ति। तस्य पंच पुत्राः। तेषां मध्यात् तृतीय पुत्रः तं शिष्यं कुरु। तस्याहं वरं दास्यामि। तेन तथा कृतं। तस्य नाम श्री जिनप्रभसूरिः। तस्यावदाता बहवः। यथा—

गयणथकी जिनि कुलह नांपि ओघइ उत्तारी, किद्ध महिप सुपवाद नयर पिक्खइ नव वारी।
ढिलीपति सुरताण पूठि तसु वृक्ष चलाविय, रयणि सेत्तुंजि सिहरि दुद्ध जलहर वरसाविय।
दोरडइ मुद्र कीधी प्रकट जिन प्रतिमा बुल्ली वयणि,
जिनप्रभसूरि सम कवण भरतखंड मंडिण रयणि ॥ १ ॥

इत्यादि प्रभावकः तपागच्छस्य धर्मध्वजदंडीदानं सप्तशतमंत्रप्रदानं काचलीयामंत्रप्रदानं कृतं। तपगच्छविस्तारो यतो जातः। श्रीअल्लावदीन पातिसाहि प्रतिबोधकः अमावस्याः पूर्णिमासी कृता; येन द्वादशयोजनं यावत् चंद्रोद्योतो जातः। पद्मावत्या कर्णकुंडलोऽर्पितो यस्य। इत्यादि बहवोऽवदाता इति।

ततः श्रीजिनप्रबोधसूरिपट्टे संवत् १३४१ वैशाखसुदि ३ दिने जावालपुरे पट्टाभिषेकः श्रीजिनचंद्रसूरिः। छाजहडगोत्रीयः। १३७७ ज्येष्ठवदि ११ दिने अणहिल्लपत्तने पट्टाभिषेकः। श्रीशत्रुंजये खरतरवसतिप्रतिष्ठाकारकः। श्रीजेसलमेरौ श्रीपार्श्वनाथबिंबं प्रतिष्ठितं। येन श्रीजावालपुरे श्रीपार्श्वनाथप्रतिमा प्रतिष्ठिता। यस्य परिकरे द्वादश शतानि साधुसाध्वीनां जातानि। श्रीमंगलवरनगरे समुद्रवासिनो देवा बहवो मंत्रबलेन वशीकृताः। देराउरे स्तूपनिवेसो जातो तस्य। तथाद्यापि प्रत्यक्षं स्मरणेन मेघं समानयति, जलपानं कारयति तृषातुराणां। अचिंत्यमहिमा श्रीखरतरगच्छवासिनां साधुसाध्वीश्रावकश्राविकाणां, तथाऽन्येषामपि नामग्राहिणां सांनिध्यं करोति, वांछितं पूरयति यो गुरुः।

ततः श्रीजिनकुशलसूरिपट्टे संवत् १३९०, ज्येष्ठसुदि ३ दिने सिंधुपुरे देराउरपुरे पट्टाभिषेकः। श्रीजिनपद्मसूरिः। तस्य वारके वेगडनिर्गतः। पट्टत्रिकं छाजहडगोत्राणां जातं परमस्माकमेवगोत्रीयाणां दास्यामः पट्टं, नान्येषां; तेन सीगडेन भ्राता वेगडः स्थापितः। श्रीसत्यपुरे बाराही साधिता। ऊधरणकेटके खरतरश्रावका जाताः। तत्पट्टे श्रीजिनलब्धिसूरिः। संवत् १४०० आसाढ सुदि १ पट्टाभिषेकः। कूर्चालसरस्वती। तस्य वारके अजयमेरौ 'हिन्दुक राजा' बीसलदेराजा। खरतराणां चतुरसीति शिष्याः व्याकरणपाठकाः। सप्तशत पौषधाः। घंटाशब्देन आलोचनं क्षामणं कुर्वंति ते। तदानवदीन पातिसाहभयेन पद्मावती प्रहिता। गुरुभिरुक्तं च शुद्धिं कृत्वा एहि। म्लेच्छैर्बद्धा देवी। अकस्मादागतो बहुसैन्यः। सर्वे प्रणष्टाः। देव्योक्तं अहं बद्धा म्लेच्छदेवैः। अथाहं न स्मरतव्या नागच्छामि। म्लेच्छबाहुल्यं जातं। गुरुभिः पंचशिष्याः, महर्धिकाश्च पंचश्राद्धा निर्वासिताः निखातद्वारे।

संवत् १४०६ महासुदि १० दिने पट्टाभिषेकः श्रीजेसलमेरुदुर्गे तत्पट्टे श्रीजिनचंद्रसूरिः। उद्यतविहारी परमसंवेगी।

संवत् १४१५ आसाढसुदि १३ श्रीस्तंभतीर्थे पट्टाभिषेकः, तत्पट्टे श्रीजिनोदयसूरिः। तस्येदं माहात्म्यं जातं। येषां शिरसि बालत्वे वासक्षेपः कृतस्ते सर्वे संघपतयो जाताः। शिष्याणां

शिरसि वासक्षेपे सर्वे पट्टस्था जाताः। प्रतिमाः प्रतिष्ठिताः ताः सर्वा मूलनायका जाताः। श्रीमालवदेशे मांडवनगरमध्ये श्रावका बहवो धनाढ्या जाताः। प्रासादाः प्रतिष्ठिताः।

संवत् १४३३ फाल्गुनवदि ६ दिने श्रीअणहिल्लपत्तने पट्टाभिषेकः तत्पट्टे श्रीजिनराजसूरिः। तस्य वारके वाचनाचार्य श्रीक्षेमकीर्तयो जाताः। साधितधरणेंद्राः। दीक्षितानेकशिष्याः। षट्त्रिंशत्वाचकाः, द्वादशपाठकाः, क्षेमधारि (डि ?) विश्रुताः।

पुनस्तस्य वारके आचार्याः श्रीजिनवर्धनसूरयः। तैः श्रीजेसलमेरौ पार्श्वनाथचैत्यमध्ये गंभारकात् क्षेत्रपालो निर्वासितः। तेन कुपितेन प्रतिज्ञा कृता अहं त्वां गच्छान्निर्त्रासयामि। रात्रौ स्त्रीरूपेण समागच्छति। ततश्चित्रकूटे गताः। तत्रापि क्षेत्रपालो नारीरूपेण पश्चिमरात्रौ उपाश्रये प्रविशति, निर्गच्छति। तथा पूर्वं सा० सहना केल्हणाऽऽचार्यस्य पदस्थापनं कारितमभूत्। तदा आचार्यरक्षाविधानमर्दलकं दत्तमभूत्। राजवश्यकारकं। तस्मिन्नवसरे क्षेत्रपाले निर्वासितः आचार्यः तत्र सर्वसंघो मिलितः। नाल्हाख्यो विधवासुतः। स तु नाहूतः आचार्यैर्मादलको गृहीतः सहणापार्श्वात् नाल्हाकस्य दत्तः। तत् प्रभावेन पा(ग्या ?)सद्दीनसुरत्राण पार्श्वे गतः सम्मानितः। सहणाख्यो बंदिगृहे क्षिप्तः। तदा पीपिलिया खरतरगच्छो निर्गतः।

ततः सप्तभिर्भकारैर्मुहूर्त्तं मीलयित्वा भाणसोल ग्रामे १, भणसालीगोत्रे २, भौमवारे ३, भद्राकरणे ४, भरणीनक्षत्रे ५, भावकृतगृहनामा। संवत् १४७५ माघसुदि १५ दिने भट्टारकश्रीजिनभद्रसूरिः स्थापितः। श्रीसागरचंद्रसूरिभिर्मंत्रो दत्तः। रात्रौ सूरिमंत्रं समवसरणं गृहीत्वा प्रणष्टाः। श्रीजेसलमेरौ आगताः। तत्र महोत्सवाः संजाताः। सं० पांचाकेनप्रासादः कारितः श्रीसंभवनाथस्य। तत्र पुस्तकभंडागारं स्थापितं। क्रमेण सप्त प्रासादाः प्रतिष्ठिताः। संखवालगोत्रीयः श्रीकीर्तिरत्नसूरीणामाचार्यपदं दत्तं। तस्य वारके ग्रामे २ पुरे २ श्रावका धनाढ्या जाताः। तस्य शतवर्षप्रमाणं जातमायुः। तस्याष्टादश शिष्याः जाताः श्रीसिद्धान्तरुचिमहोपाध्यायश्रीकमलसंयमोपाध्यायादयः।

संवत् १५१५ वर्षे वैशाखवदि २ बुधवारे अणहिल्लपत्तने पट्टाभिषेकः श्रीजिन चंद्रसूरिः। तत् स्थापितः श्रीजिनसमुद्रसूरिः। संवत् १५३३ वर्षे महासुदि १३ दिनेश्रीपुंजपुरेपट्टाभिषेकः।

तत्पट्टे चोपडागोत्रे सं० १५५५ वर्षे श्रीबीकानेरवास्तव्यमं० कर्मसीकृतनंदीमहोत्सवः श्रीजिनहंससूरिः। ढिल्यां सिकंदरपातिसाहिना कारागारे क्षिप्तः। मालवावास्तव्यसोहागदेश्राविकया 'चतुर्दससाधुसमानं कनकं ददामीति प्रोक्तं' तथापि न मुंचति। सिकंदरस्य प्रतिज्ञा येन मया बद्धो मुखेन तेन कथं वच्मि मुंचथेति पंचशतबंदिन एकस्थाने स्थिताः संति। तदा क्षेत्रपालः शय्यायाः अधः पातयति, साहि तथापि न मुंचति। तदा जेसलमेरुतः क्षेत्रपालः समेतो गुरुं प्रत्यूचे यूयं वदथ एनं मारयामि। पूज्यैरुक्तं—नायमस्माकमाचारः। क्षेत्रपालेनोक्तं—भवतो नयामि जेसलमेरुं। पूज्यैरुक्तं--अन्येषां साधूनां का गतिः ? तेनोक्तमन्यानपि क्रमेणानयिष्यामि। पूज्यैरुक्तं--नाहं प्रच्छन्नवृत्त्या यामि, तस्करवत्। ततः सूरिणा सूरिमंत्रो ध्यातः। आगता शासनदेवी। तयोक्तं--पश्यंतु भवंतो मम माहात्म्यं। तया साहिशरीरे महावेदना कृता। यथायथोपायान् कुर्वंति

तथातथाऽधिकतरा जाता। तदा वेदनापीडितो गुरुचरणयोः पतितः। भवंतः पूज्याः गच्छंतु निजं स्थानं। पूज्यैरुक्तं यदि सर्वेषां बंदिमोचनं करिष्यसि तदा यामि, नान्यथा। सर्वेपि मोचिताः। अतीव माहात्म्यं जातं। श्रीजिनहंससूरिवारके श्रीशांतिसागरसूरिभिः प्रतिष्ठा कृता। शिष्यदीक्षायां विरोधो जातः। तत्राचार्यीयो गच्छो निर्गतः। तत्रधाडीवाहागोत्रे टाटीयाशाखे सा० ठकुराकेन लक्षत्रयद्रव्यदानेन मंडोवरे राजा वशीकृतः। दोसीसाखे श्रीजिनदेवसूरीणां स्थापना कृता।

श्रीजिनहंससूरिपट्टे चोपडागोत्रे अणहिल्लपत्तने बलाही देवराजकृतमहोत्सवः संवत् १५८२ वर्षे भाद्रवावदि १३ पट्टाभिषेकः श्रीजिनमाणिक्यसूरिः। अनेकशास्त्रवेत्ता। तेन द्वादश पाठकाः स्थापिताः। एकनंद्यां चतुःषष्ठि शिष्या दीक्षिताः। सिंधुदेशे सा० धनपतिकृतमहोच्छवेन पंचनद्यः साधिताः। तस्य वारके श्रीकनकतिलकोपाध्यायादिभिः क्रियोद्धारः कृतः। श्रीदेराउरे यात्रार्थं गच्छद्भिरेव स्वर्गप्राप्तः।

संवत् १५९५ जन्म, संवत् १६०४ दीक्षा, तत्पट्टे रीहडगोत्रे संवत् १६१२वर्षे भाद्रपद ९ दिने गुरुवारे श्रीजेसलमेरुनगरे राउलश्रीमालदेवकृतमहोच्छवो भट्टारकः श्रीजिनचंद्रसूरिः स्थापितः।संवत्१६१३वर्षे श्रीविक्रमनगरे चैत्रमासे सप्तमीदिने क्रियोद्धारः कृतः। तेषां चेतेऽवदाताः श्रीफलवर्धीताद्यचैत्यतालकोद्घाटकृत्। पुनः संवत् १३४३ वर्षे ताद्यधर्म्मसागरकृतग्रंथछेदकृत्। श्रीअकबरसाहिप्रतिबोधकारी। तत्साहिवचसा युगप्रधानपदधारी। संवत् १६५२वर्षे नानगानीकृतमहोत्सवेन पंचनदीनां साधकः। सिंधु १, वहव २, बनाह ३, रावी ४, घारउ ५ इतिपंचनद्यः, तथा स्तंभतीर्थे वर्ष यावत् मीनरक्षाकृत्। श्रीज्येष्ठ पर्वणि सर्वत्राष्टदिनानि यावदमारीप्रवर्तकः। श्रीशत्रुंजयादि तीर्थेषु चैत्यप्रतिमा प्रतिष्ठाकृत्। श्रीविक्रमपुरे ऋषभबिंबादिप्रभूतबिंबप्रतिष्ठाकृत्। श्री साहि सलेमराज्ये ताद्यकृत श्रीजिनशासनमालिन्यतः श्रीसाधुविहारो निषिद्धः साहिना। तत्रावसरे श्री उग्रसेनपुरे गत्वा साहिं प्रतिबोध्य च साधूनां विहारः स्थिरीकृतः। तदा लब्धः सवाई युगप्रधान बडागुरुरितिविरुदो येन गुरुणा। एवमवदाता भूयांसः संति सुप्रसिद्धाः। तेषां निर्वाणं श्री बीलाडापुरे १६७० वर्षे आसूवदि २ दिने। स्थूपस्थापना। तस्य वारके श्रीसागरचंद्रसूरिसंतानेऽनुक्रमेण भावहर्षसूरयो निर्गता इति।

तत्पट्टे श्री जिनसिंहसूरिः चोपडागोत्री कोटिद्रव्यव्ययेन मंत्रिराज श्रीकर्मचंद्रेण कृतनंदीमहोत्सवः श्रीलाभपुरे। तन्निर्वाणं तु मेदनीतटे संवत् १६७४ वर्षे पोसवदि १३ दिने।

तत्पट्टे गुरु श्रीजिनराजसूरिः। संवत् १६७४ वर्षे फागुण सुद ७ दिने संघपति श्री आसकर्णेन कृतनंदीमहोत्सवः। तस्मिन्नेव दिने श्रीजिनसागरसूरीणामाचार्यपदस्थापनेति। कियत् काले निर्वासिताः। श्रीमज्जिनराजसूरिः तस्य पट्टे विद्यमानगुरुः।



अनुक्रमणिका

(148)